।। गीताध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ।।

गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक : गोस्वामी श्याम मनोहर,
६३, स्वस्तिक सोसायटी,
जुहु चौथा रस्ता,
विलेपार्ले - मुंबई - ४०० ०५६.

सहयोग प्रकाशन : १. श्रीहसमुखभाई शेठ, मुंबई
२. श्रीमती चंद्रावती भाटिया, मुंबई
३. किशनगढ़ वैष्णव समाज, किशनगढ़

संकलनकार : गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रथमसंस्करण : वि.सं.२०७२, श्रीमत्प्रभुचरणोत्सव.

प्रति : ५००

निःशुल्कवितरणार्थ

मुद्रक :
रमा आर्ट्स,
४, चुनावाला इन्डस्ट्रिअल् एस्टेट्,
कोंडिविटा, अंधेरी (पूर्व),
मुंबई : ४०० ०५९.

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

सम्पादकीय

ग्रन्थकर्ता गो.श्याममनोहरजीद्वारा **'गीताध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः'** प्रकाशन होने जा रहा है. प्रस्तुत ग्रंथके विषयके रूपमें श्रीमद्भगवद्गीताके अठारह अध्यायोंपर वाल्लभमतानुसार व्याख्या प्रस्तुत की गई है जिसके संक्षिप्त परिचय और रूपरेखा कुछ इस तरहसे है :

वैसे तो श्रीवल्लभजीकी तत्त्वदीपिका, श्रीपुरुषोत्तमजीकृत 'अमृत-तरंगिणी' और गो.वा.श्रीनानुलाल गांधीका अनुवाद गीताव्याख्याके रूपमें संप्रदायमें प्रसिद्ध हैं. फिर भी इस आलेखमें गीताके सभी अध्यायोंका तीन षटकमें विभाजन करके उनमें क्रमशः सूत्र, वृत्ति और भाष्य; और अठारहवें अध्यायके **''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज''** श्लोकमें स्वयं प्रभुकी पूर्व सभी आज्ञाओंके विकल्पतया उनकी शरणागति स्वीकारनेकी आज्ञा, प्रभुकी ही वार्तिककारके रूपमें प्रस्तुतिका अनोखा प्रयास है.

उपरोक्त ग्रन्थकी विलक्षणता यही है कि यह न केवल संस्कृतभाषामें छन्दोबद्ध है अपितु इदमप्रथम चर्चित विषयमें इदमित्थमतया प्रथम प्रयास किया गया है.

श्रीमहाप्रभुजीका 'स्ववंशेस्थापिताशेषस्वमहात्म्यः'नाम फलीभूत तब ही लगता है जब उनके सिद्धांत और वचनों के वर्तुलमें सीमित रहकर अपनी भाषा या शब्दों में कुछ उल्लेख होता हो, जैसा कि इस आलेखमें स्पष्ट दिखलाई देता है. और उसी वर्तुलमें रहकर कुछ ग्रहीत होता हो तब ही इस ग्रंथकी विशालता और गहनता का महत्त्व बुद्धिस्थ हो पायेगा.

'गीताध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप'की भूमिका लिखनेके लिये ग्रन्थकारके अनुरोधको स्वीकारकर माननीय श्रीसच्चिदानन्दजी मिश्रने भूमिका लिखी सो उनके प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं.

इस ग्रन्थके संकलनमें श्रीधर्मेन्द्र झाला और श्रीमतीमनीषा - श्रीपरेश शाह का सहयोग प्रदान अविस्मरणीय है. और ग्रन्थके प्रकाशनमें मुद्रणोचित सारा उत्तरदायित्व श्रीमनीष बाराईने निभाया है. सुन्दर आवरक पृष्ठ श्रीमती ख्याति भुल्लाने सजाया है.

निकीता - जगदीश - अनिल

।। पुरोवाक् ।।

श्रद्धेय गोस्वामी श्याममनोहरजीका स्नेह तथा आशीर्वाद हमपर हमेशा रहता है. श्रद्धेय गोस्वामीजीका अनुरोध प्राप्त हुआ कि गीताध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप पर मैं कुछ लिखूं. आपका वैदुष्य भारतीय दर्शनों तक ही सीमित नहीं है, अपितु पाश्चात्त्य दर्शन, विज्ञान, इतिहास, संस्कृति तथा धर्मचेतना इत्यादि विषयोंकी भी आपको गम्भीर समझ है. विरले ही मिलेंगे जिन्होंने इतनी गम्भीरतासे भारतीय दर्शनके मूलग्रन्थोंका अध्ययन किया हो और श्रद्धापूर्वक उनके अर्थों तथा तात्पर्यों को समझनेका प्रयास करते हों. इस ग्रन्थपर लिखनेका आपका अनुरोध हमारेलिए आपका आदेश ही है. गीतामें अर्जुनने जिस प्रकारसे **''करिष्ये वचनं तव''**का वादा किया, ठीक उसी प्रकार मुझ अल्पज्ञने भी आपके आदेशका अनुपालन करनेका प्रयास किया है. मुझे स्वयंपर पूरा विश्वास नहीं है कि मैं आपके वक्तव्यको सम्यक् रीतिसे समझ सका हूं. प्रस्तुत ग्रन्थमें गीताध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप प्रस्तुत किया गया है.

भारतीय चेतनाके लिए वाल्मीकिद्वारा विरचित रामायण तथा वेदव्यास द्वारा विरचित महाभारत केवल काव्य नहीं हैं. ये हमारे जीवनमें रचे बसे हैं. ये हमारेलिए केवल रसास्वादकी वस्तु नहीं अपितु पल-पल जीवन जीनेकी कला सिखानेवाले, भटकते हुए लोगोंको मार्ग दिखानेवाले, अनुशासन और आदर्श के मानक हैं. इनमें महाभारतका गुरुत्व कलेवर तथा विषयवस्तु दोनोंकी दृष्टिसे अपने आपमें स्वतः प्रदर्शित है. महाभारतके विषयमें **''भारतं पञ्चमं वेदः''** यह प्रसिद्धि है. इस प्रसिद्धिका रहस्य इस बातमें निहित है कि वेदव्यासके अनुसार आत्मकल्याणका कोई भी ऐसा रहस्य शेष नहीं है जो कि महाभारतमें न हो. इसी कारण व्यासकी प्रतिज्ञा है **''यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्''** जो इस ग्रन्थमें है वही अन्य स्थलोंमें, अन्य ग्रन्थोंमें है, जो यहां नहीं है वह कहींपर भी नहीं है. एक लाख श्लोकोंमें विस्तृत महाभारत

जीवनका कोई भी क्षेत्र, राजनीति, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र या अर्थशास्त्र शेष नहीं बचता जिस विषयमें मार्गदर्शन न करता हो. महाभारत अपने आपमें एक युद्धगाथा है, परन्तु यह युद्धका महिमामण्डन नहीं है, युद्धके वीरोंका शौर्यगान नहीं है, अपितु उस युद्धकी पृष्ठभूमिमें जीवनके रोजमर्राके प्रश्नोंपर एक गम्भीर विचार है, युद्धकी बिभीषिकाका एक हाहाकार है. इसी कारण युद्ध तथा राजनीति प्रधान इस महाकाव्यका अंगी रस शान्त रस है. महाभारतका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है 'गीता' जिसको कि ईश्वरद्वारा गीत होनेके कारण 'श्रीमद्भगवद्गीता'कहा जाता है. वस्तुतः यह ग्रन्थ महाभारत एक महत्त्वपूर्ण अंशमात्र नहीं बल्कि हिन्दूधर्मका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है. वेदान्तके दर्शनोंका तो यह एक प्रस्थान ही है, जिसपर कि वेदान्त दर्शनोंकी नींव रखी जाती है. श्रीमद्भगवद्गीता अपने अर्थगाम्भीर्य तथा विषयों की गहनताके कारण विद्वानोंके मध्य बहुत ही आदरसे जानी जाती है. श्रीमद्भगवद्गीतापर की गयीं व्याख्याओंकी संख्याको देखकर इस बातका अन्दाजा बहुत ही आसानीसे लगाया जा सकता है कि यह ग्रन्थरत्न किस प्रकारसे विविध आयामोंको समेटे हुए है.

समस्त उपनिषदोंको गायके रूपमें प्रस्तुत करते हुए श्रीमद्भगवद्गीताको उन समस्त गायोंसे प्राप्त दुग्ध बताया गया है. यह उक्ति अत्यन्त प्रसिद्ध है. परन्तु क्या श्रीमद्भगवद्गीता सिर्फ इतना है? गीताकी प्रत्येक अध्यायके अन्तमें आनेवाली पुष्पिकामें कहा जाता है **''श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे.''** यह गीता केवल उपनिषद् नहीं है, यह ब्रह्मविद्या भी है, योगशास्त्र भी है तथा प्रमुखतया श्रीकृष्ण तथा अर्जुन का, नर तथा नारायण का संवाद है. प्रत्येक अध्यायका अपना भी एक नाम है अर्जुनविषादयोग, सांख्ययोग, कर्मयोग, ज्ञानकर्मसंन्यासयोग इत्यादि. गीताको समझनेके लिए ये सभी कुछ न कुछ सूत्र छोड़े गये हैं. इनको हम पकड़ें तो गीताका अभिप्राय समझ सकते हैं.

सचमुचमें श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दूधर्मकी तरह ही बहुआयामी है. जिस प्रकार हिन्दूधर्मकी कोई एक सर्वमान्य व्याख्या कर पाना सम्भव नहीं दिखता उसी प्रकारसे श्रीमद्भगवद्गीताकी भी कोई सर्वमान्य व्याख्या सम्भव नहीं दीखती. आचार्य शंकर श्रीमद्भगवद्गीतापर अपने भाष्यके प्रारम्भमें ही भाष्य लिखनेका प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि "**वह यह गीताशास्त्र समस्त वेदार्थका सारसंग्रहरूप है, इस कारण दुर्विज्ञेय है, यद्यपि इसके अभिप्रायका उद्घाटन करनेके लिए अनेक आचार्योंके द्वारा इसके पदोंकी, पदार्थोंकी, वाक्यार्थोंकी तथा इनके अनुग्राहक न्यायोंकी व्याख्या की गयी है परन्तु सामान्य पुरुषोंके द्वारा यह अत्यन्त विरुद्ध अनेक अर्थोंवाले ग्रन्थके रूपमें गृहीत होता है, यह देखकर मैं विवेकसे अर्थका निर्धारण करनेके लिए इसकी संक्षेपमें व्याख्या करूंगा.**"[१] श्रीमद्भगवद्गीताके भाष्यके प्रारम्भमें ही आचार्य शंकरकी यह प्रतिज्ञा इस ग्रन्थके अनेक अर्थ सम्भव हैं, इसका संकेत देती है. निश्चय ही ग्रन्थकी संरचनामें ही कुछ ऐसा है जो कि इस सरलसे प्रतीत होनेवाले ग्रन्थको भी तात्पर्यकी दृष्टिसे अत्यन्तविरुद्ध अर्थोंका प्रतिपादक बना देता है. अन्यथा क्या कारण है कि आचार्य शंकरको इसी ग्रन्थमें ज्ञानयोग, तिलकको कर्मयोग, रामानुजाचार्यको भक्तियोग और इसी प्रकारसे इस ग्रन्थपर व्याख्याओंका प्रणयन करनेवाले अन्य आचार्योंको भी अलग-अलग अर्थ और उपदेश प्राप्त हो जाते हैं. इन सबका बीज ग्रंथमेंही छुपा है. अर्जुन स्वयं ही कहते हैं कि "**हे कृष्ण! एक ओर तो आप मुझे कर्मोंसे संन्यासका उपदेश दे रहे हैं तथा दूसरी ओर कर्मयोगका भी उपदेश दे रहे हैं. ऐसा करिए कि इन दोनोंमें से हमारे लिए जो श्रेय है वह हमको बताइए.**"[२] "**मिली-जुली**

१.तदिदं गीताशास्त्रं समस्तवेदार्थसारसंग्रहभूतं दुर्विज्ञेयार्थं तदर्थाविष्करणायानेकै-र्विवृतपदपदार्थवाक्यार्थन्यायमपि अत्यन्तविरुद्धार्थत्वेन लौकिकैर्गृह्यमाणमुपल-भ्याहं विवेकतोऽर्थनिर्धारणार्थं संक्षेपतो विवरणं करिष्यामि. (भगवद्गीता शांकर-भाष्यउपोद्घात)

सी बातोंके माध्यमसे आप हमारी बुद्धिको मोहित करते हुए प्रतीत हो रहे हैं. इन दोनोंमें से निर्धारण करके हमें बताइए कि श्रेय क्या है? जिससे कि मैं श्रेयको प्राप्त कर सकूं."[३] इस कारण आचार्योंकी समस्या सचमुचमें गम्भीर है. इतनी गम्भीर है कि तात्पर्यनिर्णयके लिए जिन लिंगोंका सुझाव दिया जाता है, उनका विधिवत् संयोजन करनेपर भी सन्देहका निवारण सम्यग्तया नहीं हो पाता. श्रीमद्भगवद्गीताकी व्याख्या करनेवाले समस्त आचार्य अपनी ओरसे यही कोशिष करते हैं कि गीताके निष्कर्षको सुस्पष्टतया बताया जा सके.

तात्पर्यनिर्णयके लिए परम्परामें स्वीकृत उपक्रम व उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति इन छह लिंगोंकी बात की जाये तो इससे तो सीधा-सीधा यही निष्कर्ष निकलकर सामने आता है कि इस ग्रन्थका तात्पर्य कर्ममें है. उपक्रमोपसंहारका तात्पर्य है कि प्रकरणके द्वारा प्रतिपाद्य जो अर्थ है उसका प्रकरणके प्रारम्भ तथा अन्त के द्वारा प्रतिपादन करना. श्रीमद्भगवद्गीताकी शरुआत अर्जुनके विषादसे हो रही है, अर्जुनका विषादमूलक निर्णय इसमें निहित है कि "**मैं युद्ध (कर्म) नहीं करुंगा.**" अर्जुनकी इस मनःस्थितिको संजय बहुत ही बेबाकीसे रखते हुए कहता है कि "'**मैं युद्ध नहीं करुंगा', गोविन्दसे ऐसा बोलकर अर्जुन चुप हो गया.**"[४] अर्जुनकी मनःस्थिति यही तो है, वह युद्ध नहीं करना चाहता. युद्धसे पलायन करना चाहता है. श्रीमद्भगवद्गीताकी शरुआत अर्जुनके इसी द्वन्द्वसे होती है. इस द्वन्द्वमें अर्जुन अपना पलायनका मन्तव्य रखता है. उपसंहारमें अर्जुन कहता है कि "**मैं अब सन्देहरहित हो अवस्थित**

२.संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥ गीता ५।१
३.व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ गीता ३।२

हूं, **आपके वचनका अनुपालन करुंगा.''**[५] श्रीकृष्णका वचन यही है कि **''तुम युद्ध(कर्म) करो.''** समग्र गीतामें बार-बार कृष्ण अर्जुनसे यही कह रहे हैं कि **''हे अर्जुन! तु युद्ध कर.''** इस आशयका जितनी बार आवर्तन इस ग्रन्थमें किया गया है उससे अधिक किसी अन्य बातकी आवृत्ति इस ग्रन्थमें नहीं प्राप्त होती. इस प्रकार द्वितीय तात्पर्यनिर्णायक लिंग अभ्यास भी कर्म करनेके पक्षमें ही जाता है. अपूर्वताका तात्पर्य है प्रकरणप्रतिपाद्य वस्तुका प्रमाणान्तर से अविषयीकरण. जो बात प्रकरणके द्वारा बतायी जा रही है, उसे किसी अन्य प्रमाणके द्वारा न बताया गया हो. यद्यपि सामान्य क्षत्रियकर्तव्यके विधायक शास्त्रोंके द्वारा युद्धका कर्तव्यत्व प्रतिपादित है, परन्तु अपने समक्ष अपने सगे-सम्बन्धियों, गुरुओं-आचार्यों, भाई-बन्धुओं के रहनेपर भी, कुलक्षयका महाभय उपस्थित रहनेपर भी इस प्रकारका धर्मयुद्ध कर्तव्य है, यह किसी अन्य प्रमाणसे प्राप्त नहीं होता. यह बात केवल गीतासे ही प्राप्त होती है. इस कारण इस अंशमें अपूर्वताकी उपपत्ति हो जाती है. प्रकरणके प्रतिपाद्यका जो प्रयोजन है वही फल है. इस फलका वर्णन तो श्रीमद्भगवद्गीतामें बहुधा आया ही है. कृष्ण निष्कर्षके रूपमें अर्जुनसे कहते हैं कि **''अपने अपने कर्म में अभिरत होकर व्यक्ति संसिद्धिको प्राप्त करता है... अपने कर्मसे उसकी पूजा करते हुए व्यक्ति सिद्धिको प्राप्त करता है.''**[६] **इस प्रकारसे फलरूपी तात्पर्यनिर्णायक लिंग भी कर्मके पक्षमें ही जाता है. प्रकरणद्वारा प्रतिपाद्य अर्थकी प्रशंसा ही अर्थवाद है. कृष्ण बारम्बार कर्मकी प्रशंसा करते हुए अर्जुनको कर्मके लिए प्रेरित कर रहे हैं. ''यदि तुम इस युद्धमें वीरगतिको प्राप्त करते हो तो तुम्हें स्वर्गकी प्राप्ति होगी, और यदि**

४.न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥ गीता २।९

५.स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव। गीता १८।७३

६.स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः॥

...स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ गीता १८।४५-४६

तुम विजयी होते हो तो इस पृथिवीका उपभोग करोगे.''[७] यह युद्धकी प्रशंसा ही तो है. इस कारण अर्थवादरूपी भी तात्पर्यनिर्णायक लिंग भी कर्मयोगकी ओर ही संकेत देता है. उपपत्तिका तात्पर्य युक्तिका प्रतिपादन है. कर्मयोगमें भी विविध रीतिसे युक्तिका ही उपपादन किया गया है. इस प्रकार यह ग्रन्थ सीधे-सीधे कर्म करनेका उपदेश देनेवाला ग्रन्थ दिखायी दे रहा है. इसमें कोई सन्देह नहीं शेष बचता. आचार्य शंकर जब इस ग्रन्थपर भाष्य लिखते हैं तो उनके अनुसार इस ग्रन्थका तात्पर्य कर्मयोगमें नहीं है अपितु ज्ञानयोगमें है. वे इस ग्रन्थके समग्र परिप्रेक्ष्यको देखते हैं. उनके अनुसार यह युद्धकी भूमिमें प्रस्तुत एक संवादमात्र नहीं है और न ही कृष्णका अर्जुनके लिए उपदेश केवल एक युद्धमें प्रवृत्त करनेके लिए है. अपितु इस ग्रन्थका सीधा-सीधा प्रयोजन है **''पर निःश्रेयस, कारणसहित संसारका अत्यन्त उपरम.''**[८] इस विषयमें समस्त व्याख्याकारोंकी सहमति है कि इस ग्रन्थका प्रयोजन केवल अर्जुनको युद्धका उपदेश देना नहीं है. सन्देह तो यह भी किया जाता है कि क्या सचमुचमें कृष्ण तथा अर्जुन का संवाद युद्धभूमिमें हुआ भी रहा होगा? क्या सचमुचमें इतनी देर तक युद्धके लिए सेनाऐं शान्तिसे अवस्थित रही होंगी? जो भी हो, विचारके अवसरकी दृष्टिसे इससे अच्छा रंगमंच नहीं हो सकता. यह जीवन भी तो एक युद्ध ही है. हम सभी उस युद्धके पात्र हैं. यह युद्ध केवल अर्जुनका युद्ध नहीं है अपितु हर 'नर'का युद्ध है. परन्तु क्या हम 'नारायण'से अपने विषादको बांटते हैं? क्या हम उससे पूछते हैं कि हमें युद्ध करना चाहिए या नहीं? बहुधा तो हम अपना निर्णय ही उसे बता देते हैं. अर्जुनकी स्थिति है उस स्थितिसे

७.हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। गीता २।३७

८.तस्यास्य गीताशास्त्रस्य संक्षेपतः प्रयोजनम् - परं निःश्रेयसं संसारस्यात्यन्तोपरमलक्षणम्॥ तच्च सर्वकर्मसंन्यासपूर्वकादात्मज्ञाननिष्ठारूपाद् धर्माद् भवति। श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य, उपोद्घात

हममें से हर कोई गुजरता है. अनेक बार हमें अपनोंके विरुद्ध युद्धके लिए खड़ा होना पड़ता है और अर्जुनकी तरह हम भाग खड़े होते हैं. अन्योंके साथ युद्ध करते समय हमारे युद्धके नियम अन्य होते हैं, अपनोंके साथ युद्ध करते समय वही नियम बदल जाते हैं. करुणा अन्यों पर नहीं आती, अन्योंके प्रति हमारा आचरण अहिंसाका नहीं होता, परन्तु अपनोंकी बात आने पर हमारी करुणा तथा अहिंसाका उदय हो जाता है. वस्तुतः अहंता, ममता आदि का उदय हमारे विवेकका क्षय कर देता है. अर्जुनकी यही समस्या है. किन्तु यह समस्या केवल अर्जुनकी नहीं है, समस्त मानवोंकी यही समस्या है.

श्रीमद्भगवद्गीताके अभिप्रायके निर्धारण करनेका उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है यदि हम सनातन धर्मकी प्रवृत्ति तथा विकास को समझ ले. आचार्य शंकर स्पष्टतया तथा सही तरीकेसे इसे रेखांकित करते हैं कि **''जगत्की स्थितिका कारण वेदोक्त धर्म द्विविध है प्रवृत्तिलक्षण तथा निवृत्तिलक्षण.''**[९] सनातन धर्मके मूलमें ही ये दो धाराऐं हैं. इन दोनों धाराओंका उत्स प्रेय तथा श्रेय के विकल्पके रूपमें उभरकर सामने आता है. जिसकी चर्चा कठोपनिषद्के यमनचिकेतासंवादमें तथा अन्य उपनिषदोंमें भी विस्तारसे प्राप्त होती है. गीतामें भी इन दोनों ही धाराओंका समन्वय करनेकी प्रवृत्ति दिखती है. यद्यपि उपनिषदोंमें **''यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः''** इत्यादि श्रुतिवाक्योंमें भक्तिके बीज दिखते तो हैं, परन्तु उनको क्या उपनिषदोंकी प्रधान धारा माना जाये इसमें सन्देहकी भरपूर गुंजाइश है. परन्तु गीता तक आते-आते हमें भक्तिकी ओर भी रुझान दिखायी देती है. आचार्य शंकरने श्रीमद्भगवद्गीताके तीन प्रतिपाद्य माने जाते हैं कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग. प्रथम छह अध्यायोंमें कर्मका प्राधान्य है, द्वितीय छह अध्यायोंमें भक्तिका

९.द्विविधो हि वेदोक्तो धर्मः - प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च जगतः स्थितिकारणम्। वहीं

प्राधान्य है तथा अन्तिम छह अध्यायोंमें ज्ञानका प्राधान्य है. तेरहवें अध्यायपर व्याख्या लिखना प्रारम्भ करते हुए आनन्दगिरि कहते हैं कि **''प्रथम तथा मध्यम छह अध्यायोंके द्वारा तत् तथा त्वं पदकी निरुक्ति कर दी गयी, अब अन्तिम छह अध्यायोंको वाक्यार्थज्ञान प्रतिपादन करनेके लिए प्रारम्भ किया जा रहा है.''**[१०] वस्तुतः अद्वैतवेदान्तमें चरम उपदेशवाक्य **''तत्त्वमसि''** है तथा चरम अनुभववाक्य **''अहं ब्रह्मास्मि''** है. समस्त वेदान्तोंके द्वारा इनका ही प्रतिपादन किया जाता है. सचमुचमें **''तत्त्वमसि''** समस्त वेदान्तोंका सार है. इसी कारण शमदमादिसे सम्पन्न नितान्त निर्मलस्वान्त साधनचतुष्टय सम्पन्न प्रमाताको जब ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके द्वारा **''तत्त्वमसि''** यह उपदेश किया जाता है तो उसकी परिणति **''अहं ब्रह्मास्मि''** इस अनुभवमें होती है. इसीलिए आचार्य शंकरका समग्र प्रयास इसी दिशामें है कि किस प्रकारसे श्रीमद्भगवद्गीताके द्वारा **''तत्त्वमसि''**का प्रतिपादन किये जानेका व्यवस्थापन किया जाये. कर्मयोग तथा भक्तियोग दोनों ही चित्तशुद्धिके साधन हैं. चित्तके शुद्ध हो जानेपर स्वयं ही ज्ञानका उदय हो जाता है. परन्तु जब तक चित्तकी शुद्धि नहीं हुई है, तब तक कर्म तथा भक्ति दोनोंका ही अवकाश है. चित्त शुद्ध हो जानेके उपरान्त, ज्ञान की प्राप्ति हो जानेके उपरान्त, **''अहं ब्रह्मास्मि''** ऐसा अनुभव हो जानेके बाद तो कोई भी कर्म या कोई भी उपासना कर्तव्य शेष नहीं रह जाती. उसका कर्म कर्माभासमें बदल जाता है, इसी कारण उसके लिए गीतामें कहा गया है कि **''नैव किञ्चित् करोति**

१०.प्रथममध्यमयोः षट्कयोः तत्त्वम्पदार्थावुक्तौ। अन्तिमस्तु षट्को वाक्यार्थनिष्ठः सम्यग्धीप्रधानोऽधुनाऽऽरभ्यते। गीता १३।१ शांकरभाष्य पर आनन्दगिरि व्याख्या

काण्डत्रयात्मकं शास्त्रं पदवाक्यार्थगोचरम्।
आदिमध्यान्तषट्केषु व्याख्याया गोचरीकृतम्॥ गीताके अन्तिम श्लोक पर आनन्दगिरिकृत व्याख्या.

सः.'' ऐसा व्यक्ति वस्तुतः कुछ भी नहीं करता. इस प्रकार आचार्य शंकरके द्वारा गीताका तात्पर्य प्रधानरूपसे ज्ञानमें निर्धारित किया जाता है. श्रीमद्भगवद्गीताकी अद्वैतसे भिन्न मतानुसारी व्याख्याओंमें प्रायशः भक्तिका ही प्राधान्य दिखता है, कुछेक में ही कर्मयोगका भी प्राधान्य है. रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि के अनुयायी विद्वानोंके द्वारा जो भी व्याख्याऐं लिखित हैं, उनमें भी भक्तिका ही प्राधान्य दृष्टिमें आता है. आचार्य शंकरका अभिमत सभीके लिए प्रबल पूर्वपक्षके रूपमें प्रस्तुत होता है. श्रद्धेय गोस्वामी श्याममनोहरजीद्वारा लिखित गीताध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप भी इसका अपवाद नहीं है. शुद्धाद्वैतवादके लिए रामानुजका विशिष्टाद्वैत प्रायशः समानतन्त्र ही है तथा समस्त वैष्णव सम्प्रदायोंकी दृष्टि इस ग्रन्थको लेकर यही है कि श्रीमद्भगवद्गीताके द्वारा मुख्यतः भक्तियोगका प्रतिपादन किया गया है. इस कारण उनके द्वारा शुद्धाद्वैतमतका पूर्वपक्ष किसी भी प्रकारसे प्रस्तुत नहीं किया जा सकता.

गोस्वामी श्याममनोहरजीके मन्तव्यसे मतभेद अगर हो भी, जैसा कि मेरा मतभेद है फिर भी इस बातसे असहमति नहीं हो सकती है कि उनका यह प्रयास श्रीमद्भगवद्गीताके रहस्यको समझनेका एक सशक्त तथा ईमानदार प्रयास है. आपकी दृष्टि भक्तिप्रधान है. आपके अनुसार श्रीमद्भगवद्गीताका चरम तात्पर्य ज्ञानमें नहीं है. वस्तुतः तो उपनिषदोंका तात्पर्य भी आपके अनुसार भक्तिमें ही है, ज्ञानमें नहीं. अपनी इस स्थापनाका समर्थन करनेके लिए आपने अत्यन्त गम्भीरतासे गीताका अध्ययन किया है तथा विभिन्न व्याख्याओं तथा अभिप्रायों से आप अवगत हैं. श्रद्धेय गोस्वामी श्याममनोहरजीने श्रीमद्भगवद्गीता के विभिन्न स्तरोंको खोलनेका प्रयास किया है. उनकी युक्तियां विविध स्थलोंपर इतनी प्रौढ़ हैं कि उनसे असहमत होना मुश्किल दिखता है. परन्तु उनके कुछ निष्कर्ष निश्चित ही उनकी साम्प्रदायिक वासना, श्रद्धा तथा विश्वास पर आधारित हैं.

गोस्वामी श्याममनोहरजीने एक कार्य जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण किया है वह यह है कि श्रीमद्भगवद्गीताकी जो विषयवस्तु है, वह किस प्रकारसे आ रही है, किस प्रकारसे प्रस्तुत हो रही है, किस अध्यायमें कितने श्लोकोंमें अर्जुनके द्वारा प्रश्न पूछे जा रहे हैं, क्या प्रश्न पूछे जा रहे हैं? कृष्णके द्वारा क्या उत्तर दिया गया है, किस श्लोकोंमें कितने श्लोकोंमें उत्तर दिया गया है, इन सभी विषयोंका संग्रह किया है. वे इस ग्रन्थमें तीन संवादोंको प्रदर्शित करते हैं. इन तीनों ही संवादोंका शास्त्रत्व है क्योंकि ''**शासनात् शास्त्रम्**'', ये तीनों ही संवाद अनुशासनार्थ ही हैं. इन तीन संवादोंके क्रममें इस शास्त्रके चार भेद हैं. प्रथम छह अध्याय सूत्ररूपमें प्रतिपादित हैं. द्वितीय छह अध्याय वृत्तिके रूपमें हैं तथा अन्तिम छह अध्यायोंमें पांच अध्याय भाष्यके रूपमें प्रस्तावित हैं. अन्तिम अध्याय वार्तिकके रूपमें प्रस्तावित है. यह गोस्वामी श्याममनोहरजीकी इस ग्रन्थको समझनेके लिए अपनी स्थापना है तथा अपनी एक विलक्षण पद्धति है. इस पद्धतिका अवलम्बन करते हुए इस गीताशास्त्रके तात्पर्यनिर्णयका कार्य सरल हो जाता है, ऐसी उनकी मान्यता है. इस स्थापनाका मूल सुस्पष्टतया किसी अन्य आचार्यके विचारसे प्राप्त हुआ हो ऐसा लगता नहीं. यह एक अनूठी ही ग्रन्थयोजना दिखती है, जो कि गोस्वामी श्याममनोहरजीके विचारशील मस्तिष्ककी देन है. इस ग्रन्थयोजनाके माध्यमसे कुछ विषयोंका स्पष्टीकरण सचमुचमें बहुत ही अच्छी तरहसे कर पाना सम्भव हो जाता है.

प्रथम संवाद संजय तथा धृतराष्ट्र के मध्य है जहांपर धृतराष्ट्र अन्धे हैं परन्तु व्यासके प्रसादसे संजयको प्राप्त दिव्यदृष्टिसे ज्ञात युद्धवार्ताको जानते हैं. द्वितीय संवाद कृष्ण तथा अर्जुन के मध्य है. यह संवाद युद्धके औचित्य तथा अनौचित्य के विषयमें मित्रभावसे प्रश्न-प्रतिप्रश्नके क्रमसे वार्तालाप है. परन्तु यह ध्येय है कि कृष्ण सारथीके रूपमें तथा अर्जुन रथीके रूपमें उपस्थित हैं, यह बिम्ब इस ओर संकेत

देता है कि इन दोनोंके मध्य अन्तर्यामी तथा जीवका सम्बन्ध है. एक विषादसे उद्धारक है तो दूसरा मोहसे ग्रस्त. यदि इस संवादको देखें तो यह संवाद युद्धभूमिमें घटित केवल एक सामान्य संवादके रूपमें ही उपस्थित होता है. परन्तु यह उपदेश नारायणके द्वारा नरको दिया हुआ उपदेश है. इसकी सार्थकता केवल अर्जुनके लिए नहीं है अपितु समग्र मानवजातिके लिए है. यदि केवल अर्जुनके लिए इस संवादकी सार्थकता हो तो वह मूल्यहीन हो जायेगा. गोस्वामी श्याममनोहरजी इस ग्रन्थमें एक तीसरा संवाद भी खोज लेते हैं जिसमें औपनिषद् ब्रह्मविद्याका निवेश है, जिसमें कि मित्र अर्जुन शिष्यभावसे कृष्णके समीप उपसन्न है. अर्जुनद्वारा शिष्यभावसे कृष्णके समीप उपसन्न होनेके कारण ही यह गीताशास्त्र उपनिषद् है, तथा इसी कारण यह ब्रह्मविद्या भी है. इस शास्त्रको योग कहनेका आशय यह है कि यह शास्त्र ईश्वरसंयोगकी ओर प्रवृत्त करता है. इस प्रकार कृष्ण तथा अर्जुन के मध्य संवाद केवल एक भूमिकापर नहीं है, केवल सारथी तथा रथी के मध्य, दो मित्रोंके मध्य युद्धके औचित्य तथा अनौचित्य के विषयमें ही यह संवाद नहीं है. अपितु उस संवादका एक गहन स्तर, एक उच्चतर स्तर भी है. वही उच्चतर स्तर वस्तुतः गीताका मुख्य वक्तव्य है, मुख्य कथ्य है. भगवत्पाद आचार्य शंकरकी तरह गोस्वामी श्याममनोहरजी श्रीमद्भगवद्गीताका तात्पर्य मोक्षप्राप्तिमें कर्म, भक्ति तथा ज्ञान में उत्तरोत्तरत्वको नहीं स्वीकार करते हैं. आचार्य शंकरके अनुसार "**ज्ञानादेव हि कैवल्यम्.**" ज्ञानसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है. यद्यपि विवेकचूडामणि आदि ग्रन्थोंमें वे स्पष्टतया "**मोक्षसाधनसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी**" मोक्षके साधनकी सामग्रीमें भक्ति ही श्रेष्ठ है, ऐसा बताते हैं. परन्तु उनकी भक्तिकी अवधारणा वस्तुतः भक्तिकी अवधारणा नहीं है. क्योंकि वे अनुपद ही "**स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते**" अपने स्वरूपका अनुसन्धान करना ही भक्ति है, ऐसा बताते हुए भक्ति तथा ज्ञान के मध्यके भेदको विलीन कर देते हैं. भक्ति मोक्षके प्रति साक्षात् साधन नहीं होती, बल्कि ज्ञानजनिका होनेके

कारण ही साधन बनती है. इस कारण आचार्य शंकर परम पुरुषार्थकी अवाप्तिमें ज्ञानका ही प्राधान्य स्वीकारते हैं. उसी रीतिसे गीताकी व्याख्या उन्होंने तथा उनके अनुयायी आचार्योंने की है. गोस्वामी श्याममनोहरजीके अनुसार (प्रस्तुत शास्त्रान्तर्गत उपनिषत्सारांशरूप) समग्र गीताका तात्पर्य भक्तिमें ही है. इसके लिए उन्होंने अनेक युक्तियां भी प्रस्तावित की हैं. केवल मध्यम षट्क (मध्य के छह अध्यायों) में ही भक्तिका प्रतिपादन है, ऐसा आचार्य शंकरके अनुयायी मानते हैं. परन्तु गोस्वामी श्याममनोहरजीके अनुसार कण्ठतः पूरी गीतामें भक्तिका प्राधान्य दिखता है. प्रथम षट्कमें भक्तिका प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्णका स्पष्ट वचन है - "**सभी भूतोंमें अवस्थित मुझको जो एकत्वभावनासे भजता है, वह योगी सर्वथा रहता हुआ भी मुझमें ही अवस्थित है.**"[११] द्वितीय षट्कमें भक्तियोगका प्रतिपादन तो सबको ही स्वीकार्य है. परन्तु अन्तिम षट्कमें भी भक्तिका प्रतिपादन किया ही गया है. जब कृष्ण कहते हैं कि "**जो अव्यभिचरित भक्तियोगसे मेरी सेवा करता है वह तीनों ही गुणों, सत्त्व, रजस् तथा तमस् को अतिक्रान्त कर ब्रह्मरूप हो जाता है.**"[१२] इस कारण आचार्य शंकरके अनुयायियोंका यह अभिमत कि "**केवल मध्यषट्कमें ही भक्तियोगका प्राधान्य है, गीताके वचनोंसे सिद्ध नहीं होता. इस कारण वस्तुतः इन तीन षट्कोंमें गीताका विभाग भी युक्तिसंगत नहीं है.**"[१३] इसी प्रकार यह दावा भी वस्तुतः सन्देहके घेरेमें आता है कि "**गीताके द्वारा युद्ध करनेका उपदेश नहीं दिया जा रहा है क्योंकि यही तो गीताका प्रधान उपदेश है, बहुत बार गीतामें इसका विधान किया गया है अतः इसका खण्डन नहीं किया**

११.सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ गीता ६।३१ प्रस्तुत ग्रन्थमें पृ.३ पर उद्धृत

१२.मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ गीता १४।२६ वहीं पर उद्धृत

जा सकता है.''[१४] समकालीन चिन्तकों तथा आधुनिक विद्वानोंके द्वारा गीतापर सबसे तीखा आरोप यही लगाया जाता है कि गीता युद्धका उपदेश देती है और कोई भी ग्रन्थ, जो कि युद्धकी वकालत कर रहा हो, उसका सम्मान नहीं किया जाना चाहिए. गोस्वामी श्याममनोहरजी इस आरोपको स्वयं भी सत्यापित कर रहे हैं. परन्तु यह युद्धका उपदेश रथी तथा सारथी के मध्यके संवाद तक ही सीमित है. उससे उच्चतर तथा गहनतर उपदेश भक्तिका उपदेश है. वस्तुतः तो स्वभावतः प्राप्त युद्धसे बचनेके लिए अर्जुनका प्रयास अहिंसाकी भावनासे प्रेरित होकर है भी नहीं, वह तो अपनी अकर्मण्यतासे प्रेरित है. यदि अर्जुन अहिंसाकी भावनासे प्रेरित होता तो उसके लिए युद्धका उपदेश करना विसंगत हो सकता था. परन्तु ध्येय यह है कि अर्जुनका यह प्रथम युद्ध नहीं है, इसके पूर्व भी वह अनेक युद्ध कर चुका है. कभी भी उसके मनमें करुणाका उदय नहीं होता है. परन्तु जब उसके समक्ष उसके सगे सम्बन्धी हैं, तो वह युद्धसे पलायन करना चाह रहा है. यह करुणा या अहिंसा नहीं है, अपने कर्तव्यसे विमुखता है, कायरता है. इसी कारण तो कृष्णका उपदेश अर्जुनको ललकारनेसे प्रारम्भ होता है- **''क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते''**[१५] हे पार्थ! नपुंसक मत बनो, यह तुम्हारे स्वभावके अनुकूल नहीं है. वही कृष्ण सोलहवें अध्यायमें अहिंसाको दैवी सम्पत्तिमें परिगणित करते हैं.[१६] वस्तुतः अर्जुनका पलायन अहिंसाके कारण नहीं है, वह तो मानसिक कमजोरीकी वजहसे कायरताकी ओर बढ़ रहा है. इसी बातको गोस्वामी श्याममनोहरजी बड़ी ही शिद्दतसे महसूस करते हैं कि अर्जुनके लिए युद्ध ठीक उसी प्रकारसे कर्तव्य है, जैसे कोई व्यक्ति दुराचारमें

१३.केवले मध्यषट्केऽतो भक्तियोगप्रधानता।
न गीतावचनात् सिद्धा षट्कत्रयमतिर्मुधा।। पृ.३ प्रस्तुत ग्रन्थ १।३०
१४.अन्यैस्तु गीताशास्त्रस्य युद्धकर्मोपदेशिता।
प्रधाना चानिराकार्या बहुशो वै विधानतः।। पृ.३ प्रस्तुत ग्रन्थ १।३१
१५.गीता २।३

रत हो तो उसको सदाचारमें लगाया जाये. उद्देश्य तो वस्तुतः इन दोनोंसे ही परे जाना है. इसी कारण तो कर्मकी अपेक्षा ज्ञान तथा भक्ति दोनोंका ही प्राधान्य बताया गया है. इस प्रकार न तो आचार्य शंकर और न ही किसी अन्य शास्त्रीय व्याख्याकारके अनुसार कर्मका प्राधान्य है. कर्मकी अपेक्षा ज्ञानके प्राधान्यमें तो सीधे-सीधे गीतावचन ही प्राप्त होता है. गीतामें श्रीकृष्णका वचन है कि **''सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते''** हे पार्थ! समस्त कर्म ज्ञान में परिसमाप्त हो जाते हैं. श्रीकृष्णका एक दूसरा वचन है कि **''न मे भक्तः प्रणश्यति''** हमारे भक्तका प्रणाश नहीं होता. इन दोनों ही कथनोंको परस्पर संगतिमें प्रस्तावित करते हुए गोस्वामी श्याममनोहरजी निष्कर्ष निकालते हैं कि ज्ञान तथा भक्ति का कर्मकी अपेक्षा प्राधान्य है.[१७] इस कारण कर्मका प्राधान्य तो किसी भी तरहसे उपनिषत्सारूप गीतांशमें सम्भव नहीं है.

इस कारण चार विकल्प सम्भाव्य हैं ज्ञानका प्राधान्य हो, भक्तिका प्राधान्य हो, कर्म, ज्ञान तथा भक्ति का समुच्चय हो अथवा इनका वैकल्पिकत्व हो. परन्तु यदि समुच्चय होता तो गीताका यह वचन नहीं होना चाहिए था कि **''श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाद् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते. ध्यानात् कर्मफलत्यागः''** अभ्यासकी अपेक्षा ज्ञानकी अपेक्षा

१६.गीता १६।२
१७.युद्धादिकर्मत्यागात्तु स्वकर्मपरिभ्रष्टता।
दुराचाररतो भक्तो युद्धार्थो यदि कल्पते।।
गतं तत्कर्मप्राधान्यं भक्तिप्रमुखतोक्तितः।
सुस्पष्टं कर्मतः श्रेष्ठ्यं ज्ञानभक्त्योस्तु स्वीकृतम्।।
ज्ञाने परिसमाप्तिश्च कर्मणश्चोदिता यतः।
कर्माभावेऽपि भक्तस्याविनाशोऽङ्गीकृतेः पुनः।। पृ.४ प्रथमाध्यायसंक्षेपः श्लोक ३६-३८

ध्यान तथा ध्यानकी अपेक्षा कर्मफलका त्याग विशिष्ट है.[१८] इसी प्रकारसे वैकल्पिकत्वका पक्ष भी स्वीकार्य नहीं हो सकता क्योंकि यदि कर्म, ज्ञान तथा भक्ति का वैकल्पिकत्व होता तो कर्मोंका ब्रह्ममें आधान करने का कोई भी प्रयोजन नहीं दिखता.[१९]

गीतामें जिस प्रकारसे विचारोंका समन्वय या वैचित्र्य है उसके आधारपर यह भी कहा जा सकता है कि किसी न किसी श्लोकके अभिप्रायको संज्ञानमें लेकर समुच्चय या विकल्प केलिए भी समर्थन जुटाये जा सकते हैं. परन्तु भक्तिमें गीताके तात्पर्यका निर्धारण करनेमें जितने सटीक तर्क प्राप्त हो सकते हैं, उतने अन्य विषयोंमें नहीं प्राप्त हो सकते. गोस्वामी श्याममनोहरजीके अनुसार वस्तुतः तो युद्धके लिए उद्यत पार्थके लिए युद्धका ही उपदेश किया जा रहा है. न तो ज्ञानका और न ही भक्तिका. परन्तु जहांपर कृष्ण गुरुके रूपमें उपस्थित हैं और कृष्ण शिष्यके रूपमें वहांपर युद्धाज्ञाकी प्रधानता नहीं है किन्तु वहांपर स्पष्टतया भक्तिका ही प्राधान्य है.[२०] यदि पूरीकी पूरी श्रीमद्भगवद्गीताके बजाय तत्तद् अध्यायोंपर दृष्टि डाली जाये तो हर एक अध्यायका तात्पर्य वस्तुतः न तो भक्ति न कर्म न ज्ञान में होकर जीवेश्वरके संयोगकारक विभिन्न योगोंमें ही है. हर अध्यायकी पुष्पिकामें प्राप्त होनेवाला 'योग'पद भी वस्तुतः इसीका प्रदर्शन कर रहा है. आत्मप्रयत्नके सापेक्ष विशिष्ट जो मनोगति है

१८.गीता १८।६६ उद्धृत प्रथमाध्यायसंक्षेपः पृ.४ श्लोक ४१-४२

१९.विकल्पपक्षे कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
ब्रह्मण्याधाय तान्येवं न स पापेन लिप्यते॥ प्रथमाध्यायसंक्षेपः पृ.५ श्लोक ४४-४५

२०.तस्मात् पार्थाय युद्धोपदेशस्यात्र प्रधानता।
ब्रह्मविद्यासु भक्तेर्हि प्राधान्यमपि कण्ठतः॥ प्रथमाध्यायसंक्षेपः पृ.५ श्लोक ५१

उसका संयोग ही योग है. ऐसा श्रीमद्भागवतमें बताया गया है.[२१] इस दृष्टिकोणसे समस्त अध्यायोंकी भक्तिमें योजना होनेके कारण गीताके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें पुष्पिकामें इसी बातका संकेत किया गया है. इसी कारण इस गीताशास्त्रको योगशास्त्र भी कहा जा रहा है.[२२] वस्तुतः तो अर्जुनविषाद भी इसी कारण योग बन जाता है क्योंकि उसी विषादके कारण अर्जुनका ईश्वरसे संयोग सम्भव हो रहा है. श्रीमद्भगवद्गीतामें ही श्रीकृष्णने स्वयं बताया है कि **"चार प्रकारके पुरुष हमारा भजन करते हैं आर्त, जिज्ञासु, धनकी कामना करनेवाला और ज्ञानी."**[२३] अर्जुन विषादको प्राप्तकर आर्तके रूपमें उपस्थित है. सांख्ययोग, कर्मयोग, कर्मसंन्यासयोग, ज्ञानविज्ञानयोग इत्यादि सभीकी ही भक्तिमें परिणति दिखलाना सरलतया सम्भव है. यह भक्ति माहात्म्यज्ञानपूर्वक उसी परमात्माकी आत्मरति है.[२४] ईश्वर भक्तिके द्वारा ही गम्य नहीं है यद्यपि भक्ति तो उसके अनुग्रहसे ही प्राप्त होती है.[२५] उदाहरणोंको दृष्टिगत रखते हुए भक्तिके मुख्यतया दो प्रकार कहे जा सकते हैं मार्जारी-भक्ति तथा मर्कट-भक्ति. मार्जारी भक्ति यह नाम बिल्लीके उदाहरणपर दिया गया है. बिल्लीका बच्चा

२१.आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्य चेश्वरसंयोगो योग इत्यभिधीयते॥ विष्णुपुराण ६।७।३१ प्रस्तुत ग्रन्थ में उद्धृत, पृ.२

२२.स चैष योगशब्दार्थः सर्वाध्यायैर्विवक्षितः॥ द्वितीयाध्यायसंक्षेपः पृ.११ श्लोक २५

२३.चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च पुरुषर्षभ॥ गीता ७।१६

२४.भक्तिस्तस्यैवात्मरतिः माहात्म्यज्ञानपूर्विका। चतुर्थाध्यायसंक्षेपः पृ.२४ श्लोक ५९

२५.भक्त्येकगम्यो भगवान् भक्तिश्च तदनुग्रहात्। सप्तमाध्यायसंक्षेपः पृ.३४ श्लोक १

स्वयं कुछ नहीं करता, अपनी माताके शरणमें खुदको छोड़ देता है. बिल्ली उसका ध्यान स्वयं रखती है. इसके विपरीत बन्दरका बच्चा अपने आपको अपनी माताके सहारे छोड़ता नहीं है, उसको स्वयं पकड़कर रखता है. बन्दरका बच्चा जिस प्रकारसे अपनी माताको पकड़कर रखता है उस प्रकारसे ईश्वरको पकड़कर रखना मर्कट-भक्ति है. बिल्लीके बच्चेकी तरह स्वयंको ईश्वरके शरणमें अर्पित कर देना, जो कुछ भी ईश्वरद्वारा प्रदत्त है प्रसन्नतासे उसको प्रसादके रूपमें स्वीकार कर लेना मार्जारी-भक्ति है. यद्यपि अनेकत्र मर्कटन्यायसे प्रपत्तिका उपपादन किया गया है परन्तु अर्जुनको मार्जारीन्यायसे भक्तिका उपदेश कृष्णके द्वारा किया गया है. भक्तोंमें ज्ञानीकी श्रेष्ठता बताते हुए श्रीकृष्णने इस बातको भी स्पष्टसा कर दिया है कि वस्तुतः भक्त तथा ज्ञानी में कोई बहुत अन्तर नहीं है. दोनोंमें केवल प्रक्रियागत ही अन्तर है. इसी कारण आचार्य शंकरका मत वल्लभके मतसे कहीं बहुत दूर जाता हुआ नहीं दिखता सिवाय क्रमान्तरके, कि शांकरी प्रक्रिया भक्तिसे ज्ञानकी है और वाल्लभी प्रक्रिया भगवानके जीव-ब्रह्मके तादात्म्यरूप परोक्ष महात्म्यज्ञानसे उभय तादात्म्यकी स्नेहात्मिका अनुभूतिमें पर्यवसित होती है.

प्रसंगतः यथावसर ग्रन्थकारने विविध स्थलोंपर अनेक विषयोंका युक्तिपुरस्सर प्रतिपादन किया है. जिसमें कर्मत्यागकी असम्भाव्यता, शुद्धाद्वैतका स्वरूप, जीव तथा ईश्वर का स्वरूप, नवधाभक्ति, भक्तिका स्वरूप तथा उसके उपाय इत्यादि शुद्धाद्वैतके विविध महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंका स्पष्टीकरण किया गया है.

गोस्वामी श्याममनोहरजीद्वारा कृत गीताप्रतिपाद्यसंक्षेपकी दृष्टिसे साररूपमें गीताके अभिप्रायका संग्रह इस प्रकारसे किया जा सकता है. प्रथमाध्यायमें अर्जुनका विषाद प्रतिपादित है. इस अध्यायका नाम अर्जुनविषादयोग है.

द्वितीय अध्यायमें घोर युद्धरूपी कर्मसे संशय है, तथा कृष्णके द्वारा अर्जुनके पूर्वपक्षका समाधान दिया गया है. युद्धकर्मका दुष्टत्व चार प्रकारोंसे होता है युद्धक्रियाका स्वरूप भी दोषयुक्त है, वध तथा वध्य के स्वरूपके विचारसे दुष्टता आती है तथा धर्म्य युद्धमें भी अधर्मसे युद्ध करनेसे भी दुष्टता है. परन्तु देह तथा देहियों का मरणशीलत्व कृत्रिम होनेके कारण युद्धक्रियाकी दुष्टताका विचार व्यर्थ है. कर्तृत्व तथा अहंकृति का त्याग, कर्मके फलका त्याग तथा यह हमारा कर्तव्य है इस प्रकारकी भावना पापकी निवारिका है. अतः विषाद या वैराग्य व्यर्थ है, इस प्रकारसे कृष्ण अर्जुनको उपदेश देते हैं.

तृतीयाध्यायका नाम कर्मयोग है. काल, कर्म, स्वभाव, प्रधान तथा पुरुष इस पंचात्मक अक्षरधाममें पुरषोत्तम विराजमान हैं. काल चेष्टा है उसका कार्य अनाकस्मिकका वारक है. उस चेष्टासे उत्पन्न क्रिया जीवमें शुभाशुभ फल प्रदान करती है. उसकी सामर्थ्यसे शरणागत जीवको ईश्वरसे योजित करना ही यह कर्मयोग है. इस अध्यायमें कर्मत्यागकी असम्भाव्यताको युक्तिपुरस्सर प्रस्तावित किया गया है. प्रकृतिके गुणसंयोगसे कर्तृत्व त्रिगुणात्मक है, रजोगुणके उपप्लवसे काम और कामसे पुनः गुणोंकी वृद्धि होती है. यह प्राकृत लीला ऐसा मानते हुए इस बातको ध्यानमें रखते हुए जीव विमुक्त हो जाता है.

चतुर्थाध्यायमें ज्ञान तथा काम के नित्यवैरी होनेके कारण ज्ञानका नाश कामसे न हो जाये, इस कारण ज्ञानके उपदेशके लिए इस अध्यायका उपक्रम किया गया है. ब्रह्मके अद्वितीयात्मक होनेके कारण ज्ञान तथा काम दोनोंका विषय वस्तुतः एक ही है. जीवोंमें वही आत्मरति अपनेसे भिन्न विषयोंसे उत्पन्न कामरूपा, दुःखरूपा तथा सच्चिदाच्छादिका है. ब्रह्मैक्याग्निमें द्वैतबुद्धिकी आहुति देते हुए सदा आत्मरति होनेसे सर्वशुद्धिविधायक ज्ञानयज्ञसे इस कामका नाश हो जाता

है. यह ज्ञानकर्मसंन्यासयोग है.

पंचम अध्यायमें कर्मसंन्यासकी अपेक्षा कर्मयोगकी महत्ता बतायी गयी है क्योंकि योगानुष्ठित कर्मवाले व्यक्ति जिसके संशय क्षीण हो चुके हैं ऐसे आत्मवान्को कर्म बांधते नहीं है. भेदबुद्धिसे रहित होकर भोग्य तथा अभोग्य में, कार्य तथा अकार्य में, करण तथा त्याग में, प्रियाप्रिय में, हर्ष तथा शोक में समत्वबुद्धिसे कर्मयोगमें रत व्यक्तिके लिए कर्म किसी भी प्रकारसे बन्धनकारी नहीं होते इसका प्रतिपादन है.

षष्ठ अध्याय आत्मसंयम योग है. इसमें मनका निग्रह किस प्रकारसे किया जाये यह मूलभूत प्रश्न है तथा युक्ताहारविहार रखते हुए, युक्त चेष्टा करते हुए वैराग्य तथा अभ्यास से उसका निग्रह करना सम्भव है यह समाधान प्रस्तुत है. गोस्वामी श्याममनोहरजीकी दृष्टिसे प्रथमाध्यायसे लेकर षष्ठ अध्याय पर्यन्त गीता सूत्रात्मिका है. इसका निहितार्थ यह है कि सूत्ररूपमें समस्त विषयोंका वर्णन यहांपर कर दिया गया है.

सप्तम अध्यायसे बारहवें अध्याय तक गीता वृत्तिरूपी है. इस सप्तम अध्यायका नाम ज्ञानविज्ञानयोग है. इसमें प्रधानतया ब्रह्मका त्रिविध स्वरूप बताया गया है. ब्रह्मस्वरूपका परिज्ञान भक्तिके लिए उपकारक होता है.

अष्टम अध्याय अक्षरब्रह्मयोग है. इस अध्यायमें आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक त्रिविध स्तरोंपर अक्षरब्रह्मके स्वरूपका प्रतिपादन किया गया है. भगवान्के माहात्म्यका बोध भक्तिके लिए परम उपकारक है.

नवम अध्याय राजविद्या राजगुह्ययोग है. इसमें आत्मरत्यंशरूपा भक्तिमें राजगुह्यतया सन्देह आदि शक्य नहीं है, इसका प्रतिपादन किया गया है. अन्तिम श्लोकके द्वारा ईश्वरमना, ईश्वरभक्त, ईश्वरयाजी, ईश्वरप्रणामी तथा ईश्वरपरायण होनेसे व्यक्ति ईश्वरको प्राप्त कर लेता है, इस प्रकारसे भक्तिका सार बताया गया है.

दशम अध्याय विभूतियोग है. इस अध्यायमें भगवान्की विभूतियोंका वर्णन किया गया है. श्रीकृष्णका उद्घोष है कि "**यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा. तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसम्भवम्.**" जो कुछ भी विभूतमान सत्त्व या श्रीमान् सत्त्व है वह सब कुछ ईश्वरके अंशसे ही समुत्पन्न है, यह अवगति भक्तिके चरम आयामका उद्घाटन करती है.

एकादश अध्याय विश्वरूपदर्शनयोग है. इसमें कृष्ण अर्जुनको अपने विश्वरूपका दर्शन कराते हैं. यह विश्वरूपदर्शन भी भगवान्के माहात्म्यका ख्यापन करनेके कारण भक्तिके लिए परम प्रेरक तथा उपयोगी है.

द्वादश अध्याय भक्तिकी महिमा तथा उसके विभेदोंको बतानेवाला भक्तियोग है. इसका विवेचन-बिन्दु मुख्यतया यह है कि कौनसा भक्तियोग श्रेष्ठ है? निराकारकी भक्ति या साकारकी भक्ति? शुद्धाद्वैतकी दृष्टिसे भगवान्का निराकारत्व तथा साकारत्व दोनों ही साथ ही साथ हैं. इन दोनोंमें कोई भी विरोध नहीं है. सर्पकुण्डलन्यायसे निराकार तथा साकार दोनों ही सत्य हैं. कुंडली बनाकर बैठा हुआ सर्प और उस सर्पकी कुंडली दोनों ही सत्य हैं. दोनोंमें एक सत्य तथा दूसरा मिथ्या नहीं है. यहां पर अद्वैतवेदान्तकी तरह निराकारकी परमार्थता तथा साकारकी व्यावहारिकता नहीं स्वीकार्य है.

त्रयोदश अध्याय क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोग है. इस अध्यायसे लेकर सप्तदश अध्याय पर्यन्त भाष्यरूपमें लिखित है. गोस्वामी श्याममनोहरजीके अनुसार इस अध्यायमें क्षर, अक्षर तथा परमात्मा के रूपमें ब्रह्मके त्रैविध्यके कारण कर्मादि मार्गत्रैविध्यका प्रतिपादन किया गया है. कर्ममार्ग देशादि छहकी अपेक्षा करता है, वह आधिभौतिक है. ज्ञानमार्ग आधिदैविक है तथा भक्तिमार्ग आध्यात्मिक है. भक्तिमार्गमें जड़, जीव तथा ईश्वरकी अपेक्षा हमेशा होती है. यदि इन तीनोंमें से एक भी नहीं है तो भक्ति सम्भव नहीं हो पाती. जड़में ममताका बन्ध है तथा जीवमें अहन्ता है, इन दोनोंद्वारा भगवान्‌को भी विषय बनाने पर भक्तिका मार्ग खुल जाता है. [२६]

चतुर्दश अध्याय गुणत्रयविभागयोग है. इस अध्यायमें गुणत्रयसमाहाररूपा प्रकृति किस प्रकारसे बन्धका कारण बनती है, किस प्रकारसे उसके द्वारा संशय, भ्रान्ति, शोक, मोह, राग, द्वेष इत्यादि उत्पन्न होते हैं. इसका विवेचन किया गया है. इस प्रसंगमें गोस्वामी श्याममनोहरजीने सृष्टि आदिकी प्रक्रियाका भी स्पष्ट वर्णन किया है.

पंचदश अध्याय पुरुषोत्तमयोग है. इसमें क्षर, अक्षर तथा परमात्मा के रूपमें ब्रह्मके त्रैविध्यका सम्यग् उपपादन किया गया है. अव्यय निराकार ब्रह्म तथा अश्वत्थ साकार ब्रह्म है. इन दोनोंका तादात्म्य स्वीकार करनेवाला शुद्धाद्वैतवाद साकारब्रह्मवाद है.

षोडश अध्याय दैवासुरसम्पद्विभागयोग है. इसमें मनुष्यकी दैवी

२६.भक्तिमार्गे ह्यपेक्ष्यन्ते जडजीवेश्वराः सदा।
जडे हि ममताबन्धो जीवेऽहन्ताकृतो यथा॥
उभयोरपि तादर्थ्यात् सेवने भक्तिमार्गिता। प्रस्तुत ग्रन्थ, त्रयोदशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप, पृ. ५६, श्लोक ११-१२

सम्पत्तियों तथा आसुरी सम्पत्तियोंका उपवर्णन किया गया है. दैवी सम्पत्ति विमोक्षके लिए तथा आसुरी सम्पत्ति बन्धनार्थ है. इस अध्यायके प्रतिपाद्यका संक्षेप देनेके क्रममें पुष्टि-प्रवाह-मर्यादाका भी विशेषतः विवेचन विद्वान् लेखकके द्वारा किया गया है. "**मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि भारत!**" हे अर्जुन! तुम दैवी सम्पत्तियोंसे युक्त हो शोक मत करो, ऐसा निर्देश देते हुए कृष्ण दैवी सम्पत्तिसे सम्पन्न प्रत्येक प्राणीको अभयप्रदान कर रहे हैं.

सप्तदश अध्याय श्रद्धात्रयविभागयोग है. इसमें सात्त्विक, राजस तथा तामस त्रिविध श्रद्धाओंका विभाग किया गया है. वस्तुतः इस सत्त्वानुरूप श्रद्धाके कारण ही प्रत्येक व्यक्तिकी प्रवृत्ति होती है. यह श्रद्धा त्रिगुणात्मिका है, इसी कारण व्यक्तियोंकी विभिन्न देवोंमें अनुराग होता है. श्रीकृष्ण स्वयं यह बताते हैं कि जो भी भक्त जिस जिस शरीरको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उसी उसी शरीरमें ही मैं उसकी श्रद्धाका विधान कर देता हूं. फिर वहीं पर यह भी कहते हैं कि जो व्यक्ति शास्त्रविधिका उल्लंघन करते हुए मनमाना आचरण करता है, उसको सिद्धिकी प्राप्ति नहीं होती. परन्तु यदि श्रद्धाके अनुरूप ही व्यक्तिकी प्रवृत्ति होती है तो इन दोनों ही भगवद्वचनोंमें किस प्रकारसे संगति हो सकेगी? इस अध्यायमें इन समस्त प्रश्नोंका समाधान खोजनेका प्रयास किया गया है. समाधान यह है कि लोकनिष्ठासे किया गया प्रत्येक कर्म त्रिगुणात्मक है, इससे परे नहीं है. परन्तु ब्रह्मनिष्ठासे किया गया कर्म नैर्गुण्यके लिए उपपन्न होता है. यही नैर्गुण्य वस्तुतः सिद्धि है जो कि शास्त्रानुसारी कर्म करनेसे प्राप्त होती है. [२७]

अष्टादश अध्याय मोक्षसंन्यासयोग है. इसमें पूर्वोक्त समस्त विषयोंका

२७.द्रष्टव्य सप्तदशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप

उपसंहारके रूपमें संकलन है. उक्त तथा अनुक्त विषयों का भी संयोजन है. इस कारण इस अध्यायको गोस्वामी श्याममनोहरजी इस अध्यायको वार्तिकके रूपमें प्रस्तावित करते हैं. निष्कर्षके रूपमें मार्जारी न्यायसे भगवानकी अनन्याश्रयात्मिका शरणागतिमें ही पुनः कृष्णार्जुनसंवादरूपा गीताका परम तात्पर्य है यह प्रतिपादन गोस्वामी श्याममनोहरजी करते हैं.

शुद्धाद्वैतकी जो दृष्टि है तथा गोस्वामी श्याममनोहरजीके प्रतिपादनमें जो बिन्दु मुझे समझमें आती है वह यह है कि समस्त मानवजाति एक ही भावभूमि पर अवस्थित नहीं है. सभी व्यक्ति समान रूपसे करुणा, दया या विवेक से युक्त नहीं हैं. ऐसी स्थितिमें किस प्रकारसे समस्त मानवप्रजातिके लिए एक ही संविधान लागू किया जा सकता है? इसी कारण हमारे शास्त्रोंमें अधिकारभेदकी बात की जाती है. गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग उपदेश इन तीनोंका है. परन्तु उपदेश वैकल्पिक नहीं है, व्यक्तिकी इच्छास्वातन्त्र्यपर निर्भर नहीं है, किन्तु व्यक्तिके अधिकार, उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति व योग्यता पर निर्भर है.

निश्चय ही गोस्वामी श्याममनोहरजी इस प्रकारके ग्रन्थोंका संस्कृतमें प्रणयन करते हुए शास्त्रीय भारतीय दर्शनकी महनीय परम्पराको ही अग्रेसर कर रहे हैं. मैं एतदर्थ आपको साधुवाद देता हूं तथा आपके इस निर्देशको अपना सौभाग्य मानता हूं कि आपने मुझे इस ग्रन्थकी भूमिका लिखनेका निर्देश दिया.

गीतार्थसंक्षेपणकार्यदक्षः गोस्वामिवर्यः श्रीकृष्णभक्तः
शुद्धाद्वयज्ञानविवेकयुक्तो रराजते श्याममनोहरोऽयम्

हरिप्रबोधिनी एकादशी, सच्चिदानन्द मिश्र
कार्तिक शुक्ल पक्ष, वि.सं.२०७३ आचार्य,दर्शन एवं धर्म विभाग
वाराणसी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

ग्रंथक्रम	पृष्ठक्रम
प्रथमाध्याय:	०१ - ०८
द्वितीयाध्याय:	०९ - १४
तृतीयाध्याय:	१५ - १८
चतुर्थाध्याय:	१९ - २६
पञ्चमाध्याय:	२७ - २९
षष्ठाध्याय:	३० - ३३
सप्तमाध्याय:	३४ - ३८
अष्टमाध्याय:	३९ - ४०
नवमाध्याय:	४१ - ४२
दशमाध्याय:	४३ - ४६
एकादशाध्याय:	४७ - ५०
द्वादशाध्याय:	५१ - ५४
त्रयोदशाध्याय:	५५ - ५८
चतुर्दशाध्याय:	५९ - ६२
पञ्चादशाध्याय:	६३ - ६८
षोडशाध्याय:	६९ - ७३
सप्तादशाध्याय:	७४ - ७७
अष्टादशाध्याय:	७८ - ८१
उद्धृतवचनानुक्रमणिका	८२ - ८५

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ प्रथमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

ब्रह्मात्मकक्षरातीतो ह्यक्षरादपि चोत्तमः ॥
स्वमहिम्न्यक्षरे धाम्नि श्रीकृष्णो राजते सदा ॥१॥

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं
देवं चैकं देवकीपुत्रमेनम् ॥
नत्वा वाणीं वाक्पतेरीदृशीञ्च
मद्वाक्शुद्धिमत्र सम्भावयामि ॥२॥

(प्रतिपाद्यविषयविमर्शः)

शास्त्रेऽस्मिन् वक्तृश्लोकानां संख्याभेदो यथोदितः ॥
उत्तमुरवीरराघवार्यैस्तल्लिख्यते ह्यधः ॥३॥

''पञ्चसप्ततियुक्तानि श्लोकानां प्राह केशवः ॥
शतानि पञ्च, पार्थस्तु चतुरोशीतिमेव च ॥४॥
चत्वारिंशत्सञ्जयोक्ताः राज्ञैकः इति तन्मितिः'' [१] ॥

सर्वोपनिषदां सारभूतं शास्त्रमिदं खलु ॥५॥
नारायणेन हि नरायोपदिष्टं विशेषतः ॥
चतुर्विधो हि भेदोऽत्र शास्त्रे समुपलभ्यते ॥६॥
आद्यस्तु धृतराष्ट्रेणान्धेन साकं हि सञ्जयः ॥
तत्सुतानां पाण्डवानां युद्धवार्तां जगाद यत् ॥७॥
संवादे चैतयोः द्वाविंशश्लोकयोजना ॥
व्यासप्रसादतः श्रोतुं दूरस्थोऽपि क्षमोऽभवत् ॥८॥
द्वितीयोऽन्तर्गतश्चास्मिन् श्रीकृष्णार्जुनयोः पुनः ॥

१.भग.गीता भा.व्या.भू.पृ.१४

युद्धौचित्यानौचित्ये यद् मित्रभावेन जल्पनम् ॥९॥
लौकिकीं रीतिमाश्रित्य सारथिरथिनोः मिथः ॥
जीवान्तर्यामिणोः ह्यत्र पार्थश्रीकृष्णरूपयोः ॥१०॥
विषादमोहग्रस्तोद्धारकर्त्रोरिति स्थितिः ॥
तृतीयस्त्वौपनिषदब्रह्मविद्यानिवेशानात् ॥११॥
सख्युश्चार्जुनस्येह शिष्यभावोपसत्तितः ॥
गुरुशिष्योपनिषद्रूपा वागीश्वररूपिणी ॥१२॥
सर्वाध्यायपुष्पिकासु चेत्थमेवोदिता हि सा ॥
मुखोद्गततया गीता ब्रह्मविद्याशिरोपमा ॥१३॥
योगशास्त्रतयाख्याताध्यायानां योगता ततः ॥

''आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः ॥१४॥
तस्य चेश्वरसंयोगो 'योग'इत्यभिधीयते'' [२] ॥

वचनादर्जुनस्यापि विषादेन प्रपन्नता ॥१५॥
'विषादयोग'इत्याख्योऽध्यायस्तस्मादुदीरितः ॥
श्रीमद्भागवते तस्माद् अपि कामदिवृत्तीनाम् ॥१६॥
नित्यं भगवता साकं योजनेन विमुक्तता ॥

''नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप! ॥१७॥
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥
कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव वा ॥१८॥
नित्यं हरो विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥
न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ॥१९॥
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विमुच्यते'' [३] ॥

योगेश्वरेश्वरोक्तं वै योगशास्त्रमिदं नवम् ॥२०॥
तस्मात् सञ्जयसंवादस्यापि शास्त्रत्वमक्षतम् ॥

२.विष्णुपुरा.६।७।३१
३.भाग.पुरा.१०।२९।१४-१६

अग्रिमा योगशास्त्रीयाश्चाध्याया योजका मता: ॥२१॥
ईशेन सह जीवस्य ईशेन कथिता मुदा॥
जीवप्रयत्नद्वारेण जीवेश्वरसुयोजका॥२२॥
गीता चाष्टादशाध्याय-षट्क-त्रयविभागश: ॥
कर्मभक्तिज्ञानभेदै: क्रमशश्चान्तरंगत॥२३॥
मुक्तिरूपफलप्राप्तौ त्रयाणामुत्तरोत्तरा॥
कल्पिता कैश्चिदत्रैवं वक्तुं नैवोचिता तु सा॥२४॥
भक्तेस्तु त्रिषु षट्केषु श्रैष्ठ्यं कण्ठोक्तमेव हि॥
तथाहि प्रथमे षट्के भगवता प्रतिपादितम्॥२५॥
''सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थित: ॥
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते''[४]॥२६॥
तथा द्वितीयषट्केऽपि कृष्णेन ब्रह्मणा मुखात्॥
''अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्पमेधसाम्॥२७॥
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि''[५]॥
एवं तृतीयषट्केऽपि गुणातीत-स्तुतावपि॥२८॥
''मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते॥
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते''[६]॥२९॥
केवले मध्यषट्केऽतो भक्तियोगप्रधानता॥
न गीतावचनात् सिद्धा षट्कत्रयमतिर्मुधा॥३०॥
अन्यैस्तु गीताशास्त्रस्य युद्धकर्मोपदेशिता॥
प्रधाना चानिराकार्या बहुशो वै विधानत: ॥३१॥
सत्यं तद् रथिसारथ्यो: वादे नोपनिषत्स्वपि॥
ब्रह्मविद्यासु युद्धादिकर्मणां ह्यप्रसक्तता॥३२॥

४.भग.गीता ६।३१
५.भग.गीता ७।२३
६.भग.गीता १४।२६

तथाहि -
''श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाद् ज्ञानयज्ञ: परन्तप॥
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते''[७]॥३३॥
''अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्॥
साधुरेव स मन्तव्य: सम्यग्व्यवसितो हि स: ॥३४॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति॥
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति''[८]॥३५॥
युद्धादिकर्मत्यागात्तु स्वकर्मपरिभ्रष्टता॥
दुराचाररतो भक्तो ह्युद्धार्यो यदि कल्पते॥३६॥
गतं तत् कर्मप्राधान्यं भक्तिप्रमुखतोक्तित: ॥
सुस्पष्टं कर्मत: श्रेष्ठ्यं ज्ञानभक्त्योस्तु स्वीकृतम्॥३७॥
ज्ञाने परिसमाप्तिश्च कर्मणश्चोदिता यत: ॥
कर्माभावेऽपि भक्तस्याविनाशोंऽगीकृते: पुन: ॥३८॥
पार्थाय युद्धकर्माज्ञा सत्त्वेऽपि गौणता न वै॥
ज्ञानभक्त्योर्हि वक्तुं चास्मिञ्छास्त्रे कदाचन॥३९॥
त्रिषु षट्केषु कर्मादेस्त्रयाणामुपलम्भत: ॥
ज्ञानभक्तिकर्माणां च प्रतिपाद्य: समुच्चय: ॥४०॥
नैतदप्युपपन्नं वै मान्यं मतिमता क्वचित्॥
''श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाद् ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते॥४१॥
ध्यानात्कर्मफलत्याग''[९]**रित्युक्तेन** विरोधत: ॥
''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामैकं शरणं व्रज॥४२॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:''[१०]॥

७.भग.गीता ४।३३
८.भग.गीता ९।३० - ३१
९.भग.गीता १२।१२
१०.भग.गीता १८।६६

समुच्चयो विरुद्धो वै सर्वत्यागोपदेशत: ॥४३॥
ननु त्रिषु विकल्पोऽत: प्रतिपाद्य: कुतो नहि ? ॥
विकल्पपक्षे **''कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति य: ॥४४॥**
ब्रह्मण्याधाय तान्येवं न स पापेन लिप्यते'' [११] ॥
वैकल्पिकत्वे कर्मणां ब्रह्माधानं निरर्थकम् ॥४५॥
विनापीह कर्मणैव पापापाकृतिसम्भवात् ॥
अत: समुच्चयोऽप्यत्र वैकल्पिक उदीर्यते ॥४६॥
त्रयाणामपि योगानां समुच्चयविकल्पते ॥
अनुकल्पता मिथश्चात्र गीतोक्ता ह्युपलभ्यते ॥४७॥
शास्त्रस्य भक्तौ मुख्यं हि तात्पर्यं नो कुतस्तदा ॥
एवन्तु युद्धकर्मणोऽत्राप्रधान्ये विचारय ॥४८॥
तत्त्यागेनार्जुनोऽप्यत्र कुतो भक्तौ न सज्जित: ॥
''नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादात् मयाच्युत ॥४९॥
स्थितोऽस्मि गतसन्देह: करिष्ये वचनं तव'' [१२] ॥
युद्धायैवोद्यत: पार्थ: नतु भक्त्यै कथावशात् ॥५०॥
तस्मात्पार्थाय युद्धोपदेशस्यात्र प्रधानता ॥
ब्रह्मविद्यासु भक्तेर्हि प्राधान्यमपि कण्ठत: ॥५१॥
बहुधैवोपदिष्टं हि योगशास्त्रे कथान्यथा ॥
''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥५२॥
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्या: पार्थ सर्वश: '' [१३] ॥
इत्युक्तत्वेन विविधै: योगैर्गम्यो स एव हि ॥५३॥
योगेश्वर इति प्राप्ते चोपदेशस्त्रिधा मत: ॥
श्रीकृष्णपार्थसंवादे युद्धाज्ञाया: प्रधानता ॥५४॥

११.भग.गीता ५।१०
१२.भग.गीता १८।७३
१३.भग.गीता ४।११

ब्रह्मविद्योपनिषदि भक्तेरेव प्रधानता ॥
योगशास्त्रे तु सर्वैर्हि योगैरेको हि गम्यते ॥५५॥
एतदर्थं ह्याद्यषट्कं सूत्ररूपमुदाहृतम् ॥
द्वितीयं वृत्तिरूपन्तु भाष्यरूपं तत: परम् ॥५६॥
प्रागपि निजकर्तव्योपदेशस्येह प्रार्थनात् ॥
पार्थे प्रपत्ति: सिद्धैव सिद्धार्थे न विधि: क्वचित् ॥५७॥
अतस्तु ह्यन्तिमेऽध्याये प्रपत्त्यादेशमुख्यता ॥
समग्रशास्त्रप्रतिपाद्यप्रामुख्ये न कल्पते ॥५८॥
''शरणं व्रजे'' [१४] ति वचनं विधौ नेव हि युज्यते ॥
अर्थवत्तातु शास्त्रस्याप्राप्तार्थे सर्वदा मता ॥५९॥
वचनं भगवतश्चैतद् आमन्त्रणपरं तथा ॥
आशिषि वेति मन्तव्यमत: शास्त्रे हि मुख्यता ॥६०॥
पार्थस्तु सर्वथैवेष्टसखा भगवतो मत: ॥
तथाहि -
''सर्वगुह्यतमं भूय: शृणु मे परमं वच: ॥६१॥
इष्टोसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥६२॥
मामैवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥६३॥
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच: '' [१५] ॥
अत्र वर्णाश्रमाचारधर्माणां त्यागदेशना ॥६४॥
उत यज्ञतपोध्यानभक्त्यादेरपि त्याज्यता ? ॥
अत्याज्यानां मयि त्यागो कृष्णेनैवात्र वर्णित: ॥६५॥
प्रपत्तौ साधनफलत्यागेनेशबलाश्रय: ॥

१४.भग.गीता १८।६६
१५.भग.गीता १८।६४ - ६६

उपायालम्बनं त्यक्त्वोपेयस्यैवात्र चाश्रयः ॥६६॥
सर्वगुह्यतमं चैतत् पार्थाय कथनं पुनः ॥
इतः पूर्वन्तु गुह्याद्धि यद्वै गुह्यतरं मतम् ॥६७॥
ज्ञेयं तदेव सर्वाधिकारिकं नान्तिमं पुनः ॥
उपायालम्बनाशक्तावुपेयस्यावलम्बनम् ॥६८॥
प्रपत्तेस्तु प्रकारोऽयं सर्वयोगानुकल्पता ॥
मार्जारमर्कटन्यायभेदाभ्यां द्विविधं मतम् ॥७०॥
निःसाधनानां जीवानां साधनं भगवान् यतः ॥
मार्जारशावकन्यायादाश्रयस्तस्य कीर्तितः ॥७१॥
मर्कटस्य शावकस्यासमर्थस्यात्मरक्षणे ॥
मातेवाश्रयणीयः स स्वप्रयत्नेन सर्वथा ॥७२॥
भगवानेकएवात्र प्रभेदोऽत्र सुबोधितः ॥
गुह्याद् गुह्यतरस्यात्र सर्वगुह्यतमस्य च ॥७३॥
'गच्छ' 'व्रज' द्विधा तस्य भेदेनैव वर्णनात् ॥
नायं शास्त्रार्थसंक्षेपः नापि सर्वाधिकारकः ॥७४॥
स्वेष्टायैव सखायैवोपदेशोऽत्र नान्यथा ॥
गीतोक्तानाम् अशेषाणाम् उद्धारोपायवर्त्मनाम् ॥७५॥
सर्वेष्वपि भरश्चात्र स्वभक्तौ च विशेषतः ॥
मार्जारिन्यायतः पार्थसमाश्वासनम् उच्यते ॥७६॥
पापचिन्तार्जुनस्यात्र कृष्णेनैवं निवारिता ॥
आत्मोद्धारचिन्तातु दैवजीवस्वभावजा ॥७७॥
अन्यसाधारणी तस्यां मर्कटन्यायमान्यता ॥
सूत्रवृत्तिभाष्यरूपैस्त्रिभिः षट्कैर्निरूपिता ॥७८॥

(उपसंहारः)

अध्याये चान्तिमे चैवं वार्तिकत्वविचारतः ॥

गीताशास्त्रे त्वयं चात्र प्रतिपाद्यविषयो मतः ॥७९॥
यथामति मयाख्यातोऽयुक्तश्चेद् बुद्धिदोषतः ॥
उपेक्षणीयः सुधिभिः स्खलनं गच्छतो यथा ॥८०॥
सञ्जयोक्तः पार्थमोहः स्वसम्बन्धात्तु योगताम् ॥
आविष्करोति यः कृष्णः सएव शरणं मम ॥८१॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताप्रथमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ द्वितीयाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

नत्वा वाक्पतिमाचार्यं श्रीकृष्णं चार्जुनं तथा ॥
व्याख्यासमाहतिप्रश्नैः दिव्यगीतार्थबोधकान् ॥१॥
द्वितीयाध्यायसंक्षिप्तविषयार्थविवेचनम् ॥
करोमीह समासोक्तिविधिना बुद्धिशुद्धये ॥२॥

(श्लोकसंख्याविभागोक्तिः)

सञ्जयस्याद्यपद्ये तु सदयं साश्रुलोचनम् ॥
पार्थं यद् भगवानाह तेनैवोपक्रमः कृतः ॥३॥
श्लोकद्वयेन श्रीकृष्णः सखायमर्जुनं तु यत् ॥
हृद्दौर्बल्यपरित्यागं कर्तुं प्रेम्णोपदिष्टवान् ॥४॥
चतुर्थाद् दशमं यावद् धर्मसंमोहहेतवः ॥
स्वस्य कार्पण्यदोषश्च कृष्णस्य शरणागतिः ॥५॥
पार्थेन वर्णिताः षट्सु श्लोकेषु मोहशान्तये ॥
सञ्जयोक्ते च पद्ये द्वे ततस्त्वग्रिमवर्णने ॥६॥
ततः श्रीकृष्णगीतायाश्चारम्भो मोहनाशकः ॥
एकदशात्तु पद्याद्धि चिदात्मारूपवर्णनम् ॥७॥
कर्तव्यस्योपदेशश्च तथाच स्थितप्रज्ञता ॥
अर्जुनेन च पृष्टस्य समाधानं तथैव च ॥८॥
ब्राह्मी स्थितिस्तदुत्कर्षः श्लोकसंख्याविभाजनम् ॥

(अध्यायाधिकरणांगविमर्शः)

विषयोऽत्र सांख्यमत्या जीवतत्त्वस्य वर्णनम् ॥९॥

संशयस्तत्र घोरेण युद्धरूपेण कर्मणा ॥
श्रेयः कथं स्याद् आत्मनो वै युद्धक्षेत्रविडम्बना ॥१०॥
तत्र पार्थकृतः पूर्वपक्षो युद्धमनिष्टकृत् ॥
योद्धव्यानां हि ज्येष्ठानां पूज्यानां च विचारतः ॥११॥
तदुत्तरतया पार्थपूर्वपक्षनिवारणम् ॥
कृष्णेन यत् कृतं तत्त्वदीपिकाकृद्भिर्वर्णितम् ॥१२॥
पूर्वोत्तराध्याययोर्वै संगतिश्च निरूपिता ॥

(तत्त्वदीपिकाकृद्विषयसंक्षेपः)

"वैराग्यं प्रथमेऽध्याये पार्थदुःखमुदीरितम् ॥१३॥
पार्थाधिकारसिद्धौ च सांख्ययोगनिरूपणे ॥
तौ विद्यापर्वरूपत्वात् हरिवेशानुकारिणौ ॥१४॥
आत्मस्वरूपविज्ञानस्थिरबुद्धिप्रयोजनौ ॥
ततोऽशत्वपरिस्फूर्त्या भवेदाश्रयणादरः ॥१५॥
तदाश्रयवतः कार्यं तदाज्ञाधर्मपालनम् ॥
अतस्तदाज्ञारूपेण युद्धादिकरणं मतम् ॥१६॥
न पुष्टिमिश्रभक्तो हि सांख्यमात्ररुचिर्भवेत् ॥
मध्ये स्वधर्मवचनं यदुक्तं सांख्ययोगयोः ॥१७॥
तेन तद्हृदि पुष्टिस्थः प्रकारः सम्भविष्यति ॥
विषादः पूर्वमध्याये द्वितीये सांख्यमुच्यते ॥१८॥
तत्र स्वधर्मो योगान्ते स्थिरबुद्धिप्रयोजनः" [१] ॥
विषादयोगः प्रथमे सांख्ययोगस्ततोऽत्र हि ॥१९॥
एतयोः 'योग'शब्दार्थः विद्यापर्वात्मकोऽथवा ॥
भिन्नो वा ? तत्र कर्तव्या 'योगा'र्थस्य विवेचना ॥२०॥
बालबोधोक्तरीत्या हि **"सांख्ययोगौ प्रकीर्तितौ ॥**

१.भग.गीता तत्त्वदीपिका २।१।१-६

त्यागात्यागविभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः ॥२१॥
अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि ॥
यमादयस्तु कर्तव्या सिद्धे योगे कृतार्थता''[२] **॥२२॥**
इत्येवं हि तयोः रूपम् आचार्योक्तरीतिकम् ॥
'सांख्ययोग'पदे तस्माद् योगो भिन्नार्थको मतः ॥२३॥
''आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः ॥
तस्याः ईश्वरसंयोग 'योग'इत्यभिधीयते''[३] **॥२४॥**
सचैष 'योग'शब्दार्थः सर्वाध्यायैर्विवक्षितः ॥
ततोऽर्जुनः श्रीकृष्णेन साकं युक्तो विषादतः ॥२५॥
विषादयोगताह्यस्य तस्माद् युक्ता न संशयः ॥
चित्तवृत्तिनिरोधाख्ये योगेत्वन्यथा कथा ॥२६॥
विषादक्लिष्टचित्तस्य युक्तता सा कथं भवेत् ॥
उभौ भिन्नार्थकौ 'योग'शब्दौ तस्मादिहोदितौ ॥२७॥
सांख्यन्तु पुनरन्योन्यमिश्रणादेकरूपताम् ॥
गतयोः भेदसंख्यानं 'सांख्य'शब्देन द्योत्यते ॥२८॥
देहात्मनोः विवेकेन मिथो बोधेन सिद्धचति ॥
तस्माद् विषादजातस्य वैराग्यस्य तु मोहता ॥२९॥
पृथगात्मस्वरूपोपदेशेन विनिवार्यते ॥
युद्धक्रियायाः दुष्टत्वं क्रियाकारकदोषतः ॥३०॥
शस्त्रास्त्राभ्यां प्रहारेण हिंसा युद्धक्रिया मता ॥
सा चतुर्धा भवेद् दुष्टा युधिकर्मस्वरूपतः ॥३१॥
वधवध्यस्वरूपस्य विचारेणापि दुष्टता ॥
युद्धे निषिद्धरीत्यातु धर्म्ये युद्धेऽप्यधर्मता ॥३२॥
अतोहि युद्धकर्तुश्च बोधो सांख्ये विवक्षितः ॥

२.बालबोध ६,९
३.विष्णुपुरा.६।७।३१

तथैव कर्मभूतानां योद्धव्यानां स्वरूपतः ॥३३॥
युद्धस्य रीतिफलयोः योगस्यास्त्युपदेश्यता ॥
तत्सिद्धौ च स्थिता प्रज्ञा सैषा ब्राह्मी स्थितिर्मता ॥३४॥
प्रतिपाद्यार्थस्य चेत्थं क्रमोऽत्र विनिरूपितः ॥
श्लोकसंख्यानुसारेण पूर्वोक्तार्थोपनेयता ॥३५॥
उपनिषदां गवां दुग्धं यच्चेहास्त्यमृतोपमम् ॥
दोग्धुः कृष्णस्य हि मुखान्निसृतम् इतएव हि ॥३६॥
तत्रादौ ये हि योद्धव्याः ते देहा देहिनोऽथवा ॥
श्लोकैकादशादग्रे पञ्चश्लोकेषु चोक्तवान् ॥३७॥
देहानां देहिनां वापि मर्त्यत्वमविवेककृत् ॥
मृत्युः प्राणवियोगात्मा संयोगः कृत्रिमस्तु सः ॥३८॥
सच्चिदंशौ तु भिन्नौ वै मृत्युर्नैकतरस्य हि ॥
तयोरेकत्वबुद्धिस्तु मिथ्यैवाभिमतिस्तदा ॥३९॥
ब्रह्मण्यंशिनि पार्थक्येनैवमुद्गमएतयोः ॥
संयोगस्त्वेतयोः नित्यो न वै स्रष्ट्रा कृतो मतः ॥४०॥
मिथ्याभिमतिभातोऽतोऽनित्ये का परिदेवना ? ॥
देहिनो यदि योद्धव्याः शस्त्रास्त्राभ्यां न तत्क्षयः ॥४१॥
सतस्त्वात्मनः तावद् अभावो नैव सम्भवः ॥
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः[४] **॥४२॥**
इत्यादि भेदसंख्यानं श्लोकात् पञ्चदशात्तु वै ॥
आरभ्य विंशतिं यावद् मोहाभावाय वर्णितम् ॥४३॥
योद्धृरूपविचारेऽपि सैष न्यायः प्रवर्तते ॥
श्लोकैकविंशादाराभ्य यावत्पञ्चविंशति ॥४४॥
तस्माद् युद्धक्रियाकर्मकर्तृचिन्तनतो मुधा ॥
विषादो वाथ वैराग्यं, युद्धे पार्थाय देशितम् ॥४५॥

४.द्रष्ट.भग.गीता २।१६-१८

योद्धव्यमृत्युरूपं हि फलं युद्धस्य यद्यपि॥
तत्तु युद्धाद् विरत्यापि कोत्र वारयितुं क्षमः॥४६॥
इति षड्विंशमारमारभ्य श्लोकद्वयनिरूपितम्॥
योद्धव्यरूपमीमांसोपसंहृतिरतो द्वयात्॥४७॥
युद्धस्य धर्म्याधर्म्यत्वदोषादोषविचिन्तने॥
कर्मनैयत्यसाफल्ये ऐहिकं पारलौकिकम्॥४८॥
विचार्य वर्णिता सार्धश्लोके त्वितिकर्तव्यता॥
ततश्चैकोनचत्त्वारिंशादारभ्य ह्युपक्रमः॥४९॥
कर्मकौशलरूपस्य योगस्याथोपपादनम्॥
अत्यागे योगमार्गो हि त्यागस्तु मनसैव हि॥५०॥
कर्तृत्वाहंकृतेस्त्यागः फलत्यागोऽपि कर्मणः॥
इतिकर्तव्यता सैषा युद्धे पापनिवर्तिका॥५१॥
चतुःपञ्चाशततमे जिज्ञासा पूर्वद्योतिता॥
योगिनः स्तिथप्रज्ञस्य विषये हृद्गता शुभा॥५२॥
भगवान् नवभिः श्लोकैः वर्णयित्वा तु मानसः॥
वाचिकं कायिकञ्चापि व्यवहारं हि योगिनः॥५३॥
द्वाषष्ठिश्लोकमारभ्य तथा श्लोकद्वयेन हि॥
अयोगिनोऽपि स्वरूपं योगिनश्च तथा पुनः॥५४॥
उपसंहारश्लोके हि स्थितिं ब्राह्मीं हि जीवताम्॥
अन्ते ब्रह्मनिर्वाणसमवाप्तिफलां सदा॥५५॥
उक्त्वा चिदंशजीवात्मा सच्चिदानन्दब्रह्मणः॥
आनन्दस्य हि क्षुद्रायाः मात्रायाश्चोपजीवनात्॥५६॥
स्वरूपस्थतया सोऽपि कृतार्थत्वेन चोदितः॥
स्वात्मसौख्यं हि सर्गान्तं यावद् भुक्त्वा प्रलीयते॥५७॥
सृष्टेः सच्चिदंशानां लयश्चांशिनि जायते॥

(उपसंहारः)

द्वितीयाध्यायसंक्षेपः व्याख्येयविषयक्रमात्॥५८॥
वर्णितोऽत्र मयाचार्यकृपया बालबुद्धिना॥
यद्यदुष्टोऽथवादुष्टो वाञ्जलिः कृष्णपादयोः॥५९॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताद्वितीयाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ तृतीयाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

कर्मकूपे दक्षिणवामदृष्टी
स्वांशान् विभागेन हि दृष्टुकामः ॥
जीवेषु दैवेषु तु मार्गयुग्मं
मोक्षाय बन्धाय तृतीयमसृजत् ॥१॥
स एकएवात्र द्वितीयवर्जितः
स्वकर्तृभावात्तु विषादग्रस्तं ॥
त्रातुं सखायं किल कर्मयोगं
जगाद् सर्वात्मकसर्वबन्धुः ॥२॥
सएव कृष्णः शरणं मदीयः
सदा हि सर्वत्र च सर्वकर्मसु ॥
तेनोपदिष्टस्य विचिन्तनेऽपि
तमेकमेवं शरणं व्रजामि ॥३॥

(श्लोकवक्तृसंख्याविभागः)

अध्यायोपक्रमः पार्थपद्ययुग्मेन वर्णितः ॥
ततऊर्ध्वं पञ्चत्रिंशं यावत् प्रत्युत्तरं मतम् ॥४॥
भगवद्वचनैस्तत्र पार्थशंकैकपद्यगा ॥
सप्तत्रिंशाद् आसमाप्तिं भगवद्वचनानि हि ॥५॥
एवं हि त्रिचत्वारिंशच्छ्लोकैरध्यायवर्णने ॥
कर्मयोगोपदेशाय तृतीयाध्यायसम्मतः ॥६॥

(अध्यायप्रतिपाद्याधिकरणांगविमर्शः)

कालः कर्मस्वभावश्च प्रधानपुरुषौ तथा ॥
पञ्चात्मकेऽक्षरे धाम्नि राजते पुरुषोत्तमः ॥७॥
कालश्चेष्टा तस्य कर्म ह्यनाकस्मिकवारकम् ॥
तेन जाता क्रिया जीवे शुभाशुभफलप्रदा ॥८॥
तत्सामर्थ्यप्रपत्तिभ्यां जीवानामीशयोजनम् ॥
कर्मयोग इति ख्यातस्तृतीये विषयो मतः ॥९॥
संशयः पार्थबुद्धौ वै बुद्धिश्चेद् ज्यायसी यदि ॥
कुतः कर्मणि घोरे हि नियोजयति केशवः ॥१०॥
पूर्वपक्षस्तु वचनानि व्यामोहैकपराणि हि ॥
सिद्धान्तं भगवानाह व्यामोहननिवारकम् ॥११॥

(श्लोकप्रतिपाद्यविषयविभागः)

भगवद्वचने तावद् व्यामोहविनिवारके ॥
निष्ठाद्वयविधानेन सांख्ययोगविचारतः ॥१२॥
ज्ञानयोगः कर्मयोगः इति द्वेधा द्वयोरपि ॥
उभयोः कर्मणां त्यागस्त्वश्रेयस्करएव हि ॥१३॥
सृष्टिः कर्तुः कर्मजाता ह्यंशिनो हि यदा तदा ॥
अंशानां कर्मराहित्यं नेह सम्भवति क्वचित् ॥१४॥
प्रकृतिस्तु क्रियारूपा ज्ञानात्मा पुरुषो मतः ॥
संयोगादुभयोः सृष्टिः कालकर्मप्रचोदिता ॥१५॥
कर्मकर्तृत्वमेवं हि जीवे सांयोगिकं मतम् ॥
द्विविधं कायिकं चापि तथा मानसिकं पुनः ॥१६॥
कर्मेन्द्रियैः कायिकं वै मनसा मानसिकं तथा ॥
कर्मेन्द्रियाणां संयमेन मनो नो संयतं भवेत् ॥१७॥
तेनैतत् मिथ्याचरणं कर्मत्यागात्मकं मतम् ॥

मनसो नियमेनैव कर्म यद् बहिरिन्द्रियै: ॥१८॥
क्रियमाणं न मिथ्या स्याद् कर्मयोघस्त्वयं मत: ॥
तदत्र कर्मनिर्वाहो नियतानान्तु कर्मणाम् ॥१९॥
मनोनिरोधतो ज्ञेयो यज्ञभावनया पुन: ॥
लोकसंग्रहभावेन लीलाऽनुकरणेन च ॥२०॥
अज्ञेष्वितरजीवेषु बुद्धिभेदाकरेण च ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियतं संघतानि हि ॥२१॥
मन चाञ्चल्यतो विद्वान् न तत्रानुघतो भवेद् ॥
यस्यैवं कर्मजा सृष्टि: लीलारूपेह सम्मता ॥२२॥
तस्मै स्वकर्मसंन्यासात् कर्मत्याघो हि श्रेयसे ॥
इत्येवमत्र लोकानां पञ्चविंशतिभि: पुन: ॥२३॥
त्रिंशच्छ्लोकपर्यन्तं कर्मानुष्ठेयतां जघाद् ॥
एतस्मादन्यथाबुद्धि: सर्वज्ञानविमूढता ॥२४॥
भघवन्मतस्यानुष्ठात् स्वधर्मपरिनिष्ठता ॥
अन्यथा परधर्म: स्याद् सर्वथैव भयावह: ॥२५॥
इत्येवं पञ्चभि लोकै: फलश्रुतिरुदीरिता ॥
तत्र पार्थस्य शंकेयं सृष्टौ ये तु समुद्घता: ॥२७॥
कथं ते सृष्टिनियमातिक्रमे सक्षमा: पुन: ॥
षट्त्रिंशच्छ्लोकशंकाया समाधानमुवाच ह ॥२ ॥
पद्यै चर्तुभि: भघवान् लोकेष्वघ्रिमेषु वै ॥
सृष्टौ हि कामक्रोधादि जीवे प्रकृतियोघत: ॥२८॥
रजोघुणोपप्लवेन कामक्रोधसमुद्भव: ॥
प्रकृतेर्घुणसंयोघात् कर्तृत्वं त्रिघुणात्मकम् ॥२९॥
रजोघुणोपप्लवेन कामस्तेन घुणा: पुन: ॥
विवर्धन्ते हि लीलेयं प्राकृता सांख्यबुद्धिना ॥३०॥
एतञ्चात्मघतं मत्वा ध्यानेनैवं वियुज्यते ॥

विषयेन्द्रियमनोबुद्धिघतं कामं जयेत् पुन: ॥३१॥
यत्नेन मत्वा चात्मानं परमेवं हि मुच्यते ॥
अन्यथा कामबद्धो हि न च श्रेयोऽनुप यति ॥३२॥

(उपहं रर:)

इत्येवं तृतीयाध्याये कर्मयोघस्य साधनम् ॥
कृतं सखायै कृष्णेन युद्धकर्मणि प्रेरणम् ॥३३॥

इति श्रीमद्भघवद्घीतातृतीयाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप:
घोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन याममनोहरेण कृत:
सम्पूर्ण:

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ चतुर्थाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

ज्ञानेन कर्मसंन्यासाद् ब्रह्मार्पणधियैव तु ॥
ब्रह्मतादात्म्यानुभूतेरुपदेष्टॄन् नमाम्यहम् ॥१॥

(श्लोकवक्तृसंख्यानिरूपणम्)

तुर्येऽध्याये त्रिभिश्लोकैरेतस्यैव ह्युपक्रमः ॥
विवस्वान्मन्विक्ष्वाकुपारम्पर्यागतस्य वै ॥२॥
कृष्णेन भगवता चोक्तः सख्ये भक्ताय सर्वतः ॥
उपक्रमे तु ज्ञानस्य स्तुतिरेवमुदीरिता ॥३॥
सख्यभावात्तु सन्देहः सख्यौ समभवत् तदा ॥
अवतीर्णस्य कृष्णस्य कथमाद्योपदेष्टृता ? ॥४॥
अर्जुनेन कृतः प्रश्नः श्लोकेनैकेन चात्रहि ॥
शिष्टैस्तु सर्वश्लोकैर्हि अध्यायार्थोपदेशना ॥५॥

(अध्यायाधिकरणांगविमर्शः)

पूर्वाध्याये मिथो ज्ञानकामयोः नित्यवैरिता ॥
"**आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥६॥**
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च"[१] ॥
इत्येवं ज्ञाननाशो हि यथा कामेन नो भवेत् ॥७॥
तादृज्ज्ञानोपदेशाय चतुर्थाध्याय उद्यमः ॥
विषयोऽयं संशयोऽत्र सिद्ध्येद् ज्ञानं कथं पुनः ॥८॥

१.भग.गीता ३।३९

इन्द्रियग्राह्यजगति ह्यनित्ये कामवर्धके ॥
नित्यज्ञानेन बोध्यस्य बोधः शक्यः कथं भवेत् ? ॥९॥
दुःशकः कामघातो हि उपायाभावतः सदा ॥
इति प्राप्ते पूर्वपक्षे पारम्पर्यागतं तु यद् ॥१०॥
ज्ञानं तत् चेतरं तावद् इन्द्रियैर्जातमित्यपि ॥
अनित्यं प्राकृतं तद् वै जायते प्रकृतेर्वशात् ॥११॥
अवतीर्णस्वरूपस्य प्राकृतानुकृतिः परम् ॥
प्रकृतिं तां वशीकृत्य न जातु प्रकृतेर्वशात् ॥१२॥
प्रकृतावप्राकृतस्य निदर्शनविनिश्चयः ॥
प्रकृत्यतीतसत्ताचेतनोपादानकं जगत् ॥१३॥
यथाऽविकृतस्वर्णाद् वै कुण्डलविकृतिः पुनः ॥
स्वर्णजाकृति सौवर्णी स्वर्णे चान्ते लयक्षमा ॥१४॥
रूपनामकर्मभेदभिन्ना सृष्टिरियं तथा ॥
सच्चिदानन्दतो जाता तस्मिन् तत्र लयक्षमा ॥१५॥
तद्ब्रह्मणोऽद्वितीयत्वाद् ज्ञानं कामोऽथवा पुनः ॥
स्वतोऽन्यविषयाभावादात्मरत्यानुभावकौ ॥१६॥
सैवात्मरति जीवेषु स्वभिन्नविषयोद्भवा ॥
कामरूपा दुःखरूपा सच्चिदाच्छादिका मता ॥१७॥
तत्त्वाज्ञानन्तु तद् ह्येतज्ज्ञानेन विनिवार्यते ॥
कामानां ग्रन्थिशैथिल्याद् आत्मरत्या प्रसीदति ॥१८॥
अयमुत्तरपक्षस्तु यः कृष्णेनार्जुनं प्रति ॥
कथितो ज्ञानयज्ञात्मा सर्वशुद्धिविधायकः ॥१९॥
ब्रह्मैक्याग्नौ द्वैतबुद्धेराहुत्यात्मरतिः सदा ॥
प्रादुर्भवति संसारे लीलया द्वैतदर्शके ॥२०॥
ब्रह्मात्मरतिप्राकट्यात् ब्रह्मैक्यज्ञानतः सदा ॥

"तत्र को मोहः कश्शोकः एकत्वमनुपश्यतः"[२] ॥२१॥
श्रुत्युक्तैक्यस्य विज्ञानाद् सर्वविज्ञानसंभवः॥
एतेन कामाहंकृत्योः तदात्मरतिज्ञानयोः॥२२॥
उपलब्ध्योभयोः वैरं नित्यमेवोपशाम्यति॥
एवमध्यायपञ्चांगोपेतबोधोऽयमीरितः॥२३॥
तत्रोदाहरणायेह वर्णातीतपरः पुमान्॥
उक्तः पुरुषसूक्ते यः चतुर्वर्णांगकोपि सः॥२४॥
"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः॥
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत"[३] ॥२५॥
श्रुत्युक्तचातुर्वर्णस्य नियन्तृदेवतांगवान्॥
नृषु तज्जन्मसंस्कारकर्मवृत्त्यादिभिस्तथा॥२६॥
निर्वाहे देवतावेशे वर्णधर्माधिकारिता॥
न चिन्मात्रात्मनो वर्णः कोऽपि वक्तुं हि शक्यते॥२७॥
वर्णधर्मे नियोज्याः ये ते च मिथ्याभिमानतः॥
सोप्यत्र शुद्धचैतन्ये तस्यैवाहन्तया स्थितेः॥२८॥
"भूमिरापोनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च॥
अहंकार इतीयं मे"[४] गीतावाक्यप्रमाणतः॥२९॥
मिथ्याहंममताभ्रान्तिः चिदंशे तस्य लीलया॥
भगवानेवात्र जीवेष्वहंकारतया स्थितः॥३०॥
"भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति ह्यन्त्यजः॥
आत्मसृष्टौ स स्वतन्त्रैः अनपेक्षोऽपि बालवत्"[५] ॥३१॥
भासते जीवगो यस्माद् धर्मकर्तुरकृतृता॥

२.ईशा.उप.७
३.पु.सू.३
४.भग.गीता ७।४
५.भाग.पुरा.६।१५।६

न वर्णाहंकृत्यभावे वर्णधर्माधिकारिता॥३२॥
"न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः॥
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते"[६] ॥३३॥
भगवतोऽनेकरूपाणां संघातादैक्यधी भ्रमः॥
जीवस्याल्पज्ञानवशात् ऐक्यधीभ्रान्तिवर्णता॥३४॥
एवं भगवति वर्णहेतुत्वेऽपि ह्यकर्तृता॥
जीवेऽपि भ्रान्त्या कर्तृत्वं वस्तुतो नहि कर्तृता॥३५॥
ब्राह्मणाद्याः जातयो न, ब्राह्मैक्येन विरोधतः॥
"जाति-व्यक्ति-विभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः"[७] ॥३६॥
इति भागवतोक्तत्वाद् जातिवादो न सम्मतः॥
समानवर्णस्त्रिपुंसोः जातस्तज्जातिमान् शिशुः॥३७॥
इति चेद् नियतव्यञ्जकाभावाद् नोपपद्यते॥
तस्माद् यथोक्ताचरणाद् वर्णदेवस्य संनिधिः॥३८॥
अनाचारात् तिरोधानाद् न वर्णी देहदेहिनौ॥
ततश्चाहमतिर्मिथ्या तत्कृता वर्णधर्मिता॥३९॥
तद्धर्मफलकामोऽपि वस्तुतो जीवगो नहि॥
परस्यात्मरतेरेवोद्गमाद् जीवेन्द्रियादिषु॥४०॥
अल्पज्ञत्वेनेन्द्रियार्थे कामभावोद्भवो मतः॥
सकामजीवबुद्धौ हि जन्यज्ञानविघातकः॥४१॥
कामस्य संयमे बुद्धौ स्थैर्ये हि स्थितप्रज्ञता॥
भगवल्लीलया ज्ञानकामौ तौ सगुणौ मतौ॥४२॥
तन्मात्राभिः प्राकृताभिः ज्ञानकामौ हि रञ्जितौ॥
न तज्जीवस्य शुद्धस्य स्वप्रकाशचितः क्वचित्॥४३॥
तथापि मतिस्थैर्ये तु नष्टप्राया हि वैरिता॥

६.भग.गीता ५।१४
७.भाग.पुरा.६।१५।८

ज्ञानकामगता नूनमुपायोयमुदीरित: ॥४४॥
ज्ञानेन कर्मसंन्यासो ब्रह्मार्पणधिया कृत: ॥
जीवस्येश्वरेणैवं योगाय चोपपद्यते ॥४५॥
एतज्ज्ञानेन सहित: कर्मन्यासोऽथ कर्म वा ॥
आत्मानोहंकृते: कामाद् मोक्षदानाक्षम: सदा ॥४६॥
"**कर्ता शास्त्रार्थवत्वाच्च**"[८] सूत्रप्रामाण्यनाशनम् ॥
इति चेत् श्रुणु कर्तृत्वमूलोऽहंकारएव हि ॥४७॥
भगवद्रूपो ह्यमिथ्या तत्संकल्पात्तु जीवग: ॥
तेनैक्यरूपाद् भासमाना स्वीयता भ्रान्तिरेव हि ॥४८॥
तस्य ब्रह्मात्मतादृष्टि: न मिथ्या पारमार्थिकी ॥
स्वकीयत्वमतिर्भ्रान्ता तस्यैवाहंकृतेरत: ॥४९॥
ततश्च जन्मकर्मादि भूमौ भगवतोऽपि वै ॥
मायिकं मनुते जीवो कृतकर्मविकर्मता ॥५०॥
तेन कर्मादियोगानां परप्रापकवर्त्मनाम् ॥
स्वाहंकारकृताभासाद् अब्रह्मत्वान्यथामति: ॥५१॥
वस्तुतस्त्ववतीर्णस्य सर्वशक्तिमतो यथा ॥
तदुद्धारकशक्तीनामाविर्भाव: चिदात्मनि ॥५२॥
अंशे चेत्यहंकारफलकामकृते यदा ॥
स्वकृतत्वमोहमुक्तौ तल्लीलास्फूर्तिसम्भव: ॥५३॥
कर्मण्यकर्मदर्शनं यत् कर्ता कारयिता प्रभु: ॥
तत्कारितक्रियाकर्तु: मोहोऽयुक्तो ह्यहंकृतौ ॥५४॥
कर्मबुद्धिनिवृत्तेर्हि ज्ञानेप्येवं हि कल्पना ॥
गीतायामतएवोक्ता कृष्णेन ब्रह्मभावना ॥५५॥
"**ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हवि: ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥**

८.ब्र.सू.२।३।३३

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना"[९] ॥५६॥
कर्मणि ब्रह्मतादृष्टि: ज्ञानभक्त्युपलक्षणम् ॥
ब्रह्मज्ञाता ब्रह्मज्ञानं ज्ञानोपकरणं तथा ॥५७॥
ज्ञेयं ब्रह्म ज्ञानफलं सर्वं ब्रह्मात्मकं मतम् ॥
भजनीयो भक्तिभावो ब्रह्म भक्तस्तदंशक: ॥५८॥
भक्तिस्तस्यैवात्मरति: माहात्म्यज्ञानपूर्विका ॥
स्रग्गन्धवासोऽलंकारनैवेद्यादि निवेदितम् ॥५९॥
परस्मै ब्रह्मणे सर्वब्रह्मतासाधकं मतम् ॥
तदुक्तं श्रीमदाचार्यचरणेन हि समर्पणात् ॥६०॥
सर्वेषां ब्रह्मता सिद्धान्तरहस्यतया मुखात् ॥
एतदाप्यायनं प्रोक्तमंगानां सर्वतस्तत: ॥६१॥
वाक्प्राणचक्षुश्रोत्राणाम् इन्द्रियाणां बलस्य च ॥
सर्वस्य ब्रह्मता यद्वद् ऐतदात्म्यमिदं समम् ॥६२॥
"**सर्वं ब्रह्मोपनिषदमनिराकार्यमेव हि ॥**
निरते चात्मनि ह्येवं प्रोक्ता य उपनिषत्सु वै ॥६३॥
धर्मा:"[१०] प्रादुर्भवन्त्येव जीवे तत्र समर्पणात् ॥
न्यासवद् यज्ञकर्माणां ब्रह्माग्नावाहुति: सदा ॥६४॥
एवं बहुविधा यज्ञा: विततां: ब्रह्मणो मुखे ॥
कर्मजानपि तावेवं ज्ञात्वा ब्रह्मणि मुच्यते ॥६५॥
अयं हि ज्ञानयज्ञो वै श्रेयानन्यैस्तथा पुन: ॥
ज्ञानिभिश्चोपदेश्योऽयं ब्रह्मतादात्म्यधीर्यथा ॥६६॥
तदुक्तं भगवतैवात्र ज्ञानयज्ञप्रशंसया ॥
"**येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि**"[११] ॥६७॥

९.भग.गीता ४।२४
१०.केनोप.१।१
११.भग.गीता ४।३५

एवं ज्ञानेन जातो यः कर्मसंन्यासएव वा ॥
भगवत्यर्पणाद् योगो अंशांशियोजनात्मकः ॥६८॥
न विभक्तांशता पूर्वमज्ञानेन विभाजनम् ॥
लीलयातु नामरूपकर्मणां हि विभाजनम् ॥६९॥
तदज्ञानन्तु ज्ञानेन प्राप्या यैवाविभक्तता ॥
तादात्म्यरूपा सा चात्रवतारोऽत्र निदर्शनम् ॥७०॥
अवतीर्णजन्मकर्माणि दिव्यानि कथमित्यपि ॥
"**अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ॥**
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया"[१२] ॥७१॥

(प्रतिपाद्यविषयश्लोकसंख्या)

एवमस्मिन् पार्थशंकानिरासवचने क्रमः ॥
आदौ चतुर्भिश्श्लोकैस्तु दिव्यता जन्मकर्मणोः ॥७२॥
जगाद यस्य ज्ञानेन जीवो मुच्येत मोहतः ॥
ततश्चैकेन श्लोकेन ह्येतज्ज्ञानेन ज्ञानिनः ॥७३॥
भगवद्भावमुपगताः स्तुतिरेवं निरूपिता ॥
ततः श्लोकद्वयेनात्र बहुधात्तस्वरूपतः ॥७४॥
येषु यस्य यथा बुद्धिः तथा तस्य तथागतिः ॥
कर्मसंन्यासयोगाय ह्यकर्तृत्वं हि कर्तरि ॥७५॥
अकामे फलवत्कर्मकृतौ स्वस्य निदर्शनम् ॥
तथांशिनोऽभिज्ञानेन तदीयांशेऽपि सन्मतिः ॥७६॥
ज्ञानयोगेन तद्बुद्धौ कुतो नो सम्भवेदिह ! ॥
ततः श्लोकेन चैकेन पूर्वेषामपि साक्षिता ॥७७॥
वर्णिताश्वासनायैव येन मोहो निवर्तते ॥
सख्युः पार्थस्य पश्चात्तु कर्माकर्मविकल्पना ॥७८॥

१२.भग.गीता ४।६

श्लोकैरष्टभिश्चान्ते ब्रह्मणेऽर्पणयोगतः ॥
उत्कृष्टतास्य योगस्य चोक्त्वा वैविध्यमेव च ॥७९॥
यज्ञानां षड्विधानान्तु वर्णना तेषु श्रेष्ठता ॥
द्रव्ययज्ञस्तपोयज्ञयोगयज्ञास्तथापरे ॥८०॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च प्राणापानदियाजनम् ॥
कर्मजान् निखिलानेतान् दशभिः प्रभुरुक्तवान् ॥८१॥
ज्ञानयज्ञस्य श्रैष्ठचं हि ततः पुनरभाषत ॥
तज्ज्ञानप्राप्त्युपायश्च फलञ्चापि चतुष्टयात् ॥८२॥
तस्य तादात्म्यज्ञानेन सर्वं ब्रह्मात्मकं भवेत् ॥
बोधयित्वार्धश्लोकैस्तु चतुर्भिश्चैव शंसना ॥८३॥
श्रद्धाज्ञानयोरुक्त्वाऽश्रद्धाज्ञानसंशयाः ॥
हेया इत्युपसंहारे पुनर्ज्ञानप्रशंसनम् ॥८५॥

(उपसंहारः)

चतुर्थाध्यायप्रतिपाद्यविषयोऽयं यथामतिः ॥
वर्णितोऽत्र मया स्वस्य बुद्धिसंशोधनाय हि ॥८६॥
दुष्टो वा यदि वादुष्टो भक्तिभावेन भूरिशः ॥
महाप्रभुप्रभोरंघ्रावञ्जलिरर्पितो मुदा ॥८७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताचतुर्थाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ पञ्चमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

सर्वातीतः सर्वसमः नाम्ना रूपेण कर्मणा ॥
दोषैः सर्वैरसंस्पृष्टो यश्चाध्यायोपदेशकः ॥१॥
सखायमर्जुनं कर्मसंन्यासं चोपदिष्टवान् ॥
कर्मयोगञ्च प्रेम्णा तं नौमि स्वमतिशोधकम् ॥२॥

(श्लोकसंख्याकर्तृविभागः)

कर्मणां करणत्यागौ योगेनैवोदितावुभौ ॥
श्रेयः कतरयोरेकपद्येनार्जुनसंशयः ॥३॥
शिष्टैरष्टाविंशतिभिः श्लोकैरध्यायगैः पुनः ॥
भगवद्वचनान्यत्र चाध्यायेऽस्मिन् मतानि हि ॥४॥

(प्रतिपाद्यविषयाधिकरणांगविमर्शः)

श्रेयस्करावुभौ नोभौ सन्दिग्धविषयो मतः ॥
पूर्वपक्षः कथमुभौ ? सिद्धान्ते तु मतावुभौ ॥५॥
तथापि कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥
''ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ॥६॥
निर्द्वन्द्वो''[१] ब्रह्मसदृशः सर्वबन्धात्प्रमुच्यते ॥
पूर्वाध्याये भगवता चोक्तं तेनात्र संगतिः ॥७॥
''योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जयः''[२] ॥८॥

१.भग.गीता ५।३
२.भग.गीता ४।४१

जिज्ञासायाः बीजमिदं समाधानन्तु तस्य वै ॥
उभयोर्हि समत्वेपि योगानुष्ठितयोः परम् ॥९॥
सांख्ये निजात्मरूपस्य ज्ञानेन कर्मन्यासिता ॥
अभोक्तृत्वादात्मनो वै विषयाणामभोग्यतः ॥१०॥
भोक्तृत्वाभावतः कर्मत्यागाच्चेत् कृतकृत्यता ॥
तथापि योगतो लीलेन्द्रियाणां विषयार्थिता ॥११॥
नात्मन इति युक्ता धीर्योगिनां सुखदा शुभा ॥
कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वे चिदंशे लीलया मते ॥१२॥
ब्रह्मस्वरूपाज्ञानात्तु स्वीयमत्या हि बन्धनम् ॥
भगवदीयत्वमत्या तु न्यस्तं तस्मिन् भवेत् पुनः ॥१३॥
न्यासो ब्रह्मार्पणधिया कर्तुर्भोक्तुश्च सिध्यति ॥
तत्रोदाहरणं भगवान् लीलायां बृहति पुनः ॥१४॥
कालकर्मस्वभावैश्च सृष्टौ स्वांशे तिरोहितः ॥
तेनात्मसु स्वकर्तृत्वभोक्तृत्वस्फुरणं मतम् ॥१५॥
एवं तयोरकर्तापि सर्वकर्ता सएव हि ॥
स्वांशैरेवं समोऽपि सन् विषमोपि मतः सदा ॥१६॥
लीलयाभिन्नभूतस्यैक्यं स्वाभाविकं मतम् ॥
लीलाभेदे तदात्यन्तभेदभानं भ्रमो यतः ॥१७॥
ब्रह्मस्वरूपज्ञानेन भ्रमः सर्वो निवर्तते ॥
कार्येषु कर्मसु चैवं भोग्येषु विषयेषु वा ॥१८॥
भेदधीवर्जितः साम्यं सर्वत्रैवानुभूयते ॥
कार्याकार्ये तथा भोग्याभोग्ये स्यात् समा मतिः ॥१९॥
करणत्यागयोश्चापि कर्मणां साम्यधीर्भवेत् ॥
प्रियाप्रियौ हर्षशोकौ तल्लीलादर्शकस्य वै ॥२०॥
समत्वयोगसम्प्राप्त्या ब्रह्मसाम्यं समश्नुते ॥
तेनैव ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभावेन सिध्यति ॥२१॥

अध्यायस्योपसंहारे चोक्तं भगवतैव हि ॥

''कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥२२॥
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥
स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यान् चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवो ॥२३॥
प्रणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिः मुनिर्मोक्षपरायणः ॥२४॥
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्तएव सः'' [३] ॥

सखायमर्जुनं युद्धाद् भीतं रुष्टं च शत्रुषु ॥२५॥
युद्धाय विगतेच्छं च श्रेयप्राह महेश्वरः ॥
अशक्तो यदि चेह स्याद् भोक्तारं परमेश्वरम् ॥२६॥
कर्मतत्त्यागयोः यज्ञतपसोः हि महेश्वरम् ॥
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा कृष्णं शमं व्रजेत् ॥२७॥

(उपसंहारः)

पञ्चमाध्यायविषयसंक्षेपोऽयमुदीरितः ॥
ब्रह्मसाम्येऽपि नौ कृष्ण ! त्वद्वैलक्षण्यकाम्यया [४] ॥२८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतापञ्चमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

३.भग.गीता ५।२६ - २८
४.चित्रं तवेहितम् अहोऽभितयोग -
मायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य।
सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो
भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ (भाग.पुरा.८।२३।८)

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ षष्ठाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

ध्येयः श्रीकृष्णएकः श्रद्धाभक्त्यन्तरात्मना ॥
ज्ञेयः सएकएवात्र सर्वगः सर्वरूपधृक् ॥१॥

(श्लोकवक्तृसंख्याविभागः)

अध्याये सप्तचत्वारिंशच्छ्लोकात्मके पुनः ॥
द्वात्रिंशं यावदारम्भाद् भगवद्वचनेन वै ॥२॥
ध्यानयोगोपक्रमोऽत्र तदुपायश्च वर्णितः ॥
ततोहि पार्थजिज्ञासा मनश्चांञ्चल्यहेतुका ॥३॥
मनसो निग्रहाभावात् साम्यबुद्धेर्ह्यशक्यता ॥
वैराग्याभ्यासतः शक्या इत्थं शंकानिवारणे ॥४॥
श्लोकैश्चतुर्भिरुक्त्वात्र जिज्ञासार्जुनस्य हि ॥
योगाच्चलितस्यायतेः का गतिः स्यादिति पुनः ॥५॥
चतुर्भिस्तत्समाधानं शेषैः श्लोकैरुदीरितम् ॥
अध्यायसमाप्तिं यावत् श्रीकृष्णोक्तमिहोदितम् ॥६॥

(प्रतिपाद्यार्थविमर्शः)

पद्यादौ कर्मसंन्यासः कर्मयोगस्य द्वावपि ॥
फलाकाक्षां परित्यज्य कर्तव्ये कर्मणि भवेत् ॥७॥
अतोहि योगसंन्यासौ रूपभेदेऽपि तत्त्वतः ॥
काम्यसंकल्पराहित्ये ह्यभेदे पर्यवस्यतः ॥८॥
द्वाभ्यामेवं तृतीये तु शमकारणकर्मणोः ॥

आरूढतारुक्षातो विभागेनोदितं पुनः ॥९॥
सर्वसंकल्पसंन्यासात् सिद्ध्येदारूढता तदा ॥
कर्मस्विन्द्रियार्थेषु ह्यनासक्तो यदा भवेत् ॥१०॥
पञ्चमे ह्यात्मनो ह्यस्मिन् आत्मनः शत्रुमित्रता ॥
न ह्यात्मा स्वात्मनो द्वेषे ग्रस्तो भवितुमर्हति ॥११॥
जितात्मा ह्यात्मनो बन्धुः स्वात्मशत्रुस्तु चान्यथा ॥
सप्तमे ह्यात्मजयिनि परमात्मसमाहितिः ॥१२॥
कथितौ यमनियमौ हि योगस्यांगतयात्र वै ॥
प्रत्याहारस्तु तृप्तिर्हि ज्ञानविज्ञानतृप्तता ॥१३॥
एकञ्च सप्तमाद् यावन्नवमं समतोदिता ॥
जडाजडाभ्यां साकन्तु व्यवहारे युक्ततोक्तितः ॥१४॥
दशमात्पञ्चदशं यावद् योगांगानां निरूपणम् ॥
देशासनादेर्द्योतनेन शान्तिर्निर्वार्णदायिनी ॥१५॥
युक्ताहारविहृतौ च स्वप्नजागरणे तथा ॥
दुःखहानौ चित्तस्थैर्ये निजात्मरमताफलम् ॥१६॥
विंशत्युत्तरपद्येषु ह्यसम्प्रज्ञातरूपता ॥
समाधिसाधिका यस्माद् भगवद्धामरूपता ॥१७॥
त्रिभिश्लोकैर्वर्णितात्र ब्रह्मसंस्पर्शयोग्यता ॥
ततः श्लोकद्वयेनेह ब्रह्मतादात्म्यबुद्धितः ॥१८॥
मुक्तमोचकतादात्म्याद् द्वैते चैक्यानुदर्शनम् ॥
तेन सर्वात्मभावेन नात्महान्या विमुक्तता ॥१९॥
सदेहे वा विदेहे वा मोक्षेऽप्येका स्थितिर्मता ॥
श्लोकद्वयेन कृष्णेन स्वसख्यै चोपदेशिता ॥२०॥
अत्र पार्थस्य शंकैका स्थैर्ये मनसि चास्थिरे ॥
निग्रहं दुष्करं तस्य द्वाभ्यां शंकानिवारणौ ॥२१॥
वैराग्याभ्यासतः शक्यो ह्यन्यथा दुष्करः खलु ॥

योगाच्चलितमनसोऽयते: स्यात् कीदृशी गति: ॥२२॥
पार्थप्रश्नश्चतुर्भिस्तु शिष्टैस्तस्य समाहति: ॥
अध्यायान्ते श्लोकयुग्मे चोदिता योगिश्रेष्ठता ॥२३॥
तत्रापि श्रद्धाभक्तिमत: तद्गतेनारात्मना ॥
भगवत्सम्मता युक्ततमता समुदीरिता ॥२४॥

(अध्यायाधिकरणांगविमर्श:)

ज्ञानयोगांगभूतस्य योगस्योपायवर्णने ॥
मुख्योऽत: प्रतिपाद्योऽत्र विषयो ध्यानयोगक: ॥२५॥
संशयोऽत्राधर्म्यवधोऽनुष्ठेयो ध्यानमेव वा ॥
पूर्वपक्षोऽर्जुनकृतोऽधर्म्यं गुर्वादिमारणम् ॥२६॥
सिद्धान्ते सांख्ययोगस्य भक्त्यंगस्य विचारणात् ॥
युद्धं धर्म्यं सर्वथैव भवितव्यं भविष्यति ॥२७॥
सर्वदुष्टादुष्टसमं मर्त्यामृतसमं पुन: ॥
व्यक्ताव्यक्तसमं ह्येकं निर्दोषं ब्रह्म [१] सर्वथा ॥२८॥
तद्ध्यानात् पुण्यपापानां नरकस्वर्गदायिनाम् ॥
बन्धनान्मुक्तजीवस्य [२] ब्रह्मसाम्योपलम्भिता [३] ॥२९॥
एतस्य ब्रह्मध्यानस्य योगस्यात्र निरूपणम् ॥
अध्यायारम्भतो द्वात्रिंशश्लोकेषु लभ्यते ॥३०॥
एवं ब्रह्मसाम्योपयोगियोगनिरूपणम् ॥
कृतं षष्ठे ध्यानयोगाध्याये चास्मिन् मनोरमे ॥३१॥

१.द्रष्ट.भग.गीता ५।१९ , द्रष्ट.बृह.उप.१।३।२२
२.द्रष्ट.श्वेता.उप.१।१०
३.द्रष्ट.मुण्ड.उप.३।१

(उपसंहार:)

षष्ठाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपोऽयं निरूपित: ॥
ध्येयस्य कृष्णरूपस्य ध्यानैकार्थफलस्य वै ॥३२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताषष्ठाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप:
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृत:
सम्पूर्ण:

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ सप्तमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

भक्त्येकगम्यो भगवान् भक्तिश्च तदनुग्रहात् ॥
भगवान्भक्तिभक्ताश्च त्रयो भजनहेतुकाः ॥१॥
भक्तियोगस्य वक्तारं श्रीकृष्णं पुरुषोत्तमम् ॥
भक्त्यानम्य वृत्तिरूपषट्कव्याख्यां करोम्यहम् ॥२॥
श्रीकृष्णस्य ब्राह्मिकं यद् माहात्म्यं सप्तमोदितम् ॥
अधिभूतं तथाध्यात्मं ह्याधिदैविकमेव च ॥३॥
अधियज्ञात्मकं रूपं चतुर्विधमिहाष्टमे ॥
नवमे ज्ञानविज्ञाने राजगुह्येऽर्जुनाय वै ॥४॥
उपदिष्टे तद्विभूतीनां च वर्णनमत्र हि ॥
दशमे चैकादशे प्रत्यायनं श्रोतुः विराडिति ॥५॥
द्वादशे फलितार्थस्य भक्तिरूपस्य वर्णनम् ॥
वृत्तिरूपस्य षट्कस्य चैकवाक्यत्वसंगतिः ॥६॥

(श्लोकवक्तृसंख्याविमर्शः)

श्लोकानां त्रिंशतिरूपेऽध्याये चैतस्य वर्णनम् ॥
आद्यश्लोकद्वये कृष्णकृतश्चोपक्रमो मतः ॥७॥
सविज्ञानं हि यज्ज्ञानं तद्बोधेऽन्यस्पृहाक्षतिः ॥
श्लोके तृतीये दौर्लभ्यं तत्त्वज्ञानस्य चास्य वै ॥८॥
तुर्ये च पञ्चमे श्लोके द्वैविध्यं प्रकृतेस्तु यत् ॥
जडजीवात्मकं स्वस्य रूपद्वयमुदीरितम् ॥९॥
योनिरूपे तु प्रकृती अखिलप्राणिनामिह ॥

तस्य संकल्पसामर्थ्यं कर्तृवीर्यमुदाहृतम् ॥१०॥
षष्ठादारभ्य द्वादशं यावदत्र निरूपितम् ॥
कार्यभूतेषु सर्वेषु स्वस्यावस्थितिः बीजवत् ॥११॥
जडप्रकृतिभावेषु सात्त्विकादिषु द्योतिताः ॥
तथाभावो भगवतो भगवत्येव नान्यथा ॥१२॥
स्वानन्दात्स्वीयानन्दे तत्प्राकट्यं न तेषु हि ॥
स्वानन्दस्य तिरोधानात् सात्त्विके राजसे तथा ॥१३॥
तामसे चापि भावे हि मोहकत्वमुदीरितम् ॥
ततो भगवतोऽज्ञानात् भगवत्येवाप्रपन्नता ॥१४॥
गुणाधीन्येन सर्वेषां तन्मायेयं मतेदृशी ॥
त्रयोदशादितो निन्दाऽज्ञानां त्रिषु निरूपिता ॥१५॥
ततश्चतुष्षुश्लोकेषु चातुर्विध्यस्य वर्णनम् ॥
भगवन्तं हि भजतां ज्ञानी तेषूत्तमः परः ॥१६॥
यस्तत्सर्वात्मतां ज्ञात्वा तमेव भजते सदा ॥
अत्रान्यदेवताभक्ताः स्वप्रकृत्या हि कामतः ॥१७॥
तेभ्यश्च तत्फलानां तु प्रदाता भगवान् स्वयम् ॥
श्रद्धानिर्वाहकत्वेऽपि सान्तं तत्फलमेवहि ॥१८॥
इत्येवं विंशतेरूर्ध्वं पञ्चश्लोकेषु वर्णनम् ॥
योगमायावृतत्वोक्त्या स्वस्याज्ञातत्वमेव हि ॥१९॥
स्वस्य ज्ञानन्तु सर्वस्य वस्तुजातस्य कीर्तितम् ॥
सप्तविंशतिश्लोके तु सर्गे मोहो निरूपितः ॥२०॥
इच्छाद्वेषद्वन्द्वेन भूतानां सर्गवर्तिनाम् ॥
पुण्येन कर्मणा येषां पापनाशस्तु द्वन्द्ववतः ॥२१॥
निर्मुक्त्या भजने दार्ढ्यम् अष्टाविंशतिपद्यगम् ॥
अन्ते तु स्वस्य आध्यात्ममधिदैवं तथा पुनः ॥२२॥
अधियज्ञं ब्रह्म चेति रूपाण्युद्देशकीर्तनम् ॥

प्रयाणकालेपि च तज्ज्ञाने हि युक्तता मता॥२३॥
द्वयोर्हि श्लोकयोश्चैवमुपसंहारवर्णनम्॥
षट्कादिमस्याध्यायस्य भगवता कृष्णेन हि॥२४॥

(अधिकरणांगविमर्श:)

भगवन्मुखैकगम्येऽस्मिन् संशयादेरभावत:॥
अधिकरणांगभूतानां पञ्चानां नात्र वर्णना॥२५॥

(प्रतिपाद्यविषय:)

संग्रामानुत्सुके पार्थे पूर्वे मोहनिवारणम्॥
कृतं हि सांख्ययोगाभ्यां वेदोक्तकर्मबोधनात्॥२६॥
कर्तृबाह्ये सांख्यमत्या: कर्तुश्चान्तर्हि योगत:॥
वेदोक्तवर्णधर्मेण स्वाश्रमानुगतेन हि॥२७॥
पार्थस्य कर्मफलयो: कर्तृभोक्तृत्वशोधनम्॥
शोधिते तस्य तद्भक्तौ संभवेदधिकारता॥२८॥
न संग्रामो हि भक्त्यर्थ: भक्तिर्नो संगराय हि॥
किन्तु कृष्णस्य लीलेयं बोधनार्थं समुद्यम:॥२९॥
लीलाबोधो वृथैव स्यात् तत्स्वरूपमजानत:॥
शुष्कं स्वरूपज्ञानं स्याल्लीलाबोधेन वर्जितम्॥३०॥
अतोऽत्र षट्के उभयज्ञानं तद् व्यपदिश्यते॥
तत्रैतद् अवगन्तव्यं सावधानेन चेतसा॥३१॥
एकस्याद्वितीयस्य श्रौतस्य ब्रह्मण: पुन:॥
श्रौतं बहुविधं चात्र त्रैविध्यमुपलभ्यते॥३२॥
धर्मिणि सच्चिदानंदे सत्ताचेतनारती -॥
रूपास्तु त्रिविधा धर्मा: लीलयाविर्भवन्ति हि॥३३॥
एकस्मिन् ब्रह्मणि रूपनामकर्मत्रिकं श्रुतम्॥

"त्रयं सदेकमात्मायमात्मा चैक: त्रयं मत:"[१]॥३४॥
सदंशे रूपप्राकट्यं चिदंशे नामसम्भव:॥
आनन्दांशे कर्मणो वै मौलिकश्चोद्गमो मत:॥३५॥
समष्टिव्यष्टिभेदेन कार्यद्वैविध्यमिष्यते॥
व्यष्टीभूतानि नामादिन्यक्ष्यादिगोचराणि हि॥३६॥
देशकालस्वरूपाणां परिच्छेदाच्च मोहनम्॥
समष्टिज्ञानमेतेषां नहि प्रत्यक्षगोचरम्॥३७॥
वैदैश्चयोगसांख्याभ्यां सर्वं ज्ञानं हि जायते॥
नामादिव्यष्टिज्ञानेषु जीवार्थं भासते जगत्॥३८॥
स्वक्रीडार्थं कृते त्वस्मिन् जीवाहंममताकृताद्॥
जगतीशविरोधात्तु कुतो बन्धोऽस्य नो भवेत्?[२]॥३९॥
सांसारिकी फलाशा तु यथाहि ममताकृता॥
तथैवापवर्गिकी चाहन्ताहैतुकी मता॥४०॥
ज्ञानं बाह्यार्थकं जीवे ममतोपाधिकं मृषा॥
अहन्तोपाधिकं स्वस्मिन् ज्ञानं नैव तात्त्विकम्॥४१॥
फलाशोपाधिकं कर्मज्ञानं चापि न तात्त्विकम्॥
अतस्त्रयाणां शास्त्राणामुपदेशो ह्यपेक्षित:॥४२॥
पूर्वषट्के कृते तस्मात् सिद्धा भक्त्यधिकारिता॥
तत्र सर्वेषु तल्लीलाबोधाद् भक्तिर्हि जायते॥४३॥
भक्त्यैव तस्य लीलाया: सम्यग्बोधोपि शक्यते॥
जडजीवेशभेदेषु प्राकृतेषु गुणेषु च॥४४॥
अव्यक्तगुणवैषम्याद् रजस्सत्त्वतमोगुणा:॥
ब्रह्मस्वरूपत्रैविध्यं पूर्वं यच्चोदितं हि तद्॥४५॥
बहुधा लीलया तत्र स्वात्मन्याविर्भवत्यपि॥

१.बृह.उप.१।६।३
२.द्रष्ट.सुबो.१।८।४०

कर्मस्वभावकालात्मा ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा: ॥४६॥
तेष्वमिश्रितरूपेषु क्षुब्धेषु मिश्रितेषु ॥
जीवानां गतयस्तिस्र: पापपुण्योभयेतरा: ॥४७॥
चर्षण्यासुरदैवात्मा जीवभेदास्तथाऽपरे ॥
दैवानां श्रेयसे कर्मज्ञानभक्तिविभेदगा: ॥४८॥
इत्याद्या: निखिला जीवे तस्य लीलात्मका मता: ॥
भेदश्चैषामैच्छिकं हि ब्रह्मणोऽद्वितीयस्य हि ॥४९॥
भक्त्यैतेषु सर्वेषु लीलाकृतविभेदधी: ॥
तया भगवति मन:प्रणिधानेन सिद्ध्यति ॥५०॥
तस्मिन्वै भक्तिभावस्य ब्रह्मात्मैक्यविबोधत: ॥
सप्तमाध्यायप्रतिपाद्य संक्षेपोयं निरूपित: ॥५१॥

(उपसंहार:)

त्वां स्मरेयं न वाहं वा प्रयाणसमये मम ॥
जीवता तु मया स्वामिन्! मा भूस्त्वं विस्मृतो भुवि ॥५२॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासप्तमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप:
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृत:
सम्पूर्ण:

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ अष्टमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

मानसीनात्मनस्तस्य प्रादुर्भावकाराय हि ॥
सत्यप्यगणितानन्दे गणितानन्दकाय च ॥१॥
निजानन्दघनीभूतराधामूर्तिधराय वै ॥
कृष्णमाहात्म्यज्ञानेन ज्ञेयरूपाय सर्वथा ॥२॥
लीलाक्षीराब्धिलहरीचन्द्रे स्नेहोपलब्धये ॥
अक्षरब्रह्मयोगेन ध्येयाय हि नमोनमः ॥३॥

(श्लोकवक्तृसंख्याविमर्शः)

अष्टाविंशतिपद्यानामध्यायोपक्रमेऽत्र वै ॥
आद्यौ श्लोकावर्जुनस्य स्फुटबोधार्थिनस्त्विह॥४॥
षड्विंशतिभिः पद्यैस्तु ह्यग्रे तत्त्वविवेचना ॥
अक्षरं ब्रह्म चाध्यात्ममधिदैवाधिभौतिकम् ॥५॥
कर्माधियज्ञौ कृष्णेन विचित्य प्रतिपादितम् ॥
पार्थजिज्ञासोपशमः तावता सम्भविष्यति ॥६॥

(अधिकरणांगविमर्शः)

भगवन्मुखैकगम्येऽस्मिन् संशयादेरभावतः ॥
अधिकरणांगभूतानां पञ्चानां नात्र वर्णना ॥७॥

(प्रतिपाद्यविषयः)

तृतीयात्पञ्चमं यावत् पार्थजिज्ञासितस्य वै ॥
प्रतिपादनन्तु कृष्णेनात्र पद्ये तु सप्तमे ॥८॥
मृत्युकाले भगवतः स्मरणे भगवद्गतिः ॥
अतोहि सर्वकालेषु स्मृत्युपेता युधिक्रिया ॥९॥

सार्धैकादशं यावत् ततः स्वस्य च धामिनः ॥
"यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ॥१०॥
तं तमेवैति जीवोऽयं सदा तद्भावभावितः" [१] ॥
नियमात्संस्मरन् कृष्णं मृतोऽपि कृष्णमाप्नुयात् ॥११॥
आब्रह्मभुवनालोकाः पुनरावृत्तिशालिनः ॥
श्रीकृष्णाक्षरलोकस्तु पुनरावृत्तिवर्जितः ॥१२॥
प्रभेदमेतमुक्त्वा तु ह्यक्षरात्प्रभवाप्ययौ ॥
श्लोकैकविंशतिं यावत् तदक्षरनिरूपणम् ॥१३॥
श्लोके द्वाविंशतितमे भक्तिलभ्यः परः पुमान् ॥
विराट्स्वरूपं सर्वत्र सर्वदा व्यापकन्तु यत् ॥१४॥
तस्मिन्काले प्रयातॄणां योगिनां ब्रह्मज्ञानिनाम् ॥
शुक्लकृष्णगती ज्ञात्वा न मोहः सम्भवेत् क्वचित् ॥१५॥
आषड्विंशतिश्लोकं निरूप्यान्तेऽर्जुनाय वै ॥
अष्टाविंशतिश्लोके तु योगतद्गतिप्रेरणा ॥
भक्तार्थं भगवता चोक्ता ह्यनुकल्पतया पुनः ॥१६॥

(उपसंहारः)

अक्षरब्रह्मयोगाख्याध्यायानुक्तस्य वर्णनम् ॥
अध्यायोपक्रमे प्रोक्तमाचार्योक्तदिशा मया ॥१७॥
अक्षरब्रह्मयाथात्म्यप्रतिपादनपरायणम् ॥
वन्दे वाक्पतिमाचार्यं वल्लभं देशिकं मुदा ॥१८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताअष्टमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

१.भग.गीता ८।६

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ नवमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

यस्यात्मरतिशीलस्य जडजीवेशरूपता ॥
तदानन्दतिरोधानात् तस्मिन्स्यात्सानुसूयता ॥१॥
जीवेषु तदभावे तु राजविद्याधिकारिता ॥
भक्तेर्हि राजविद्यात्वं स्वीकर्त्रे नौमि भक्तिमान् ॥२॥

(अधिकरणांगविमर्शः)

आत्मरत्यंशरूपायां भक्तौ तु संशयादिकम् ॥
राजगुह्यतयाऽशक्यमतो नात्र विचारणा ॥३॥

(वक्तृश्लोकसंख्याप्रतिपाद्यम्)

चतुर्विंशतिभिः श्लोकैः राजविद्येयमादितः ॥
अन्तं यावत् कृष्णगीता स्वमुखात्स्वजनाय हि ॥४॥
उपक्रमस्त्रिभिः पद्यैः विद्यागुणनिरूपणम् ॥
तृतीयेऽश्रद्दधानस्य गतिः संसारवर्त्मनि ॥५॥
ततं भगवताव्यक्तमूर्तिना स्वात्मकं जगत् ॥
व्यक्तमूर्तेस्तु सर्वत्र तिरोहितया स्थितिः ॥६॥
कर्तृत्वं व्यक्तमूर्तेस्तूपादानत्वन्तु चाक्षरे ॥
श्लोकैकादशं यावत् जगतो हि भवाप्ययौ ॥७॥
मानुषीं तनुमाश्रित्य लीलया प्रकटस्य हि ॥
महेश्वरत्वाज्ञानात्तु मूढानां मतिभिन्नता ॥८॥
दैवजीवाः महात्मानोऽनन्येन मनसा सदा ॥
सततं कीर्तयन्तस्तं प्रणताः भक्तिभावतः ॥९॥
सा चतुर्विंशतिं यावदेवं भक्तेर्हि स्तुत्यता ॥
ततोहि श्लोकयुग्मेन ज्ञानयज्ञेन याजकाः ॥१०॥

एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥
क्रतुस्वधौषधाज्याग्निमन्त्राहुत्यादिकं तथा ॥११॥
कर्मरूपाणि तस्यैव ज्ञात्वा तानि ह्युपासते ॥
श्लोके सप्तदशे भगवान् मातृपितृपितामहः ॥१२॥
प्रणवः ऋग्यजुस्सामप्रभवप्रलयादिकम् ॥
अमृतं मृत्यु सदसत् च सर्वं वै भगवानिह ॥१३॥
त्रयीधर्मानुप्रपन्नाः चेत्थं स्वर्गतिकामिनः ॥
भक्त्यभावात्तु ज्ञात्वापि गतागतगतिंलभाः ॥१४॥
द्वाविंशतितमे पद्ये येऽनन्याः भगवत्पराः ॥
तेषां योगक्षेमयोस्तु भगवानेव वाहकः ॥१५॥
उक्त्वैवं भगवानाह चाग्रिमेषु त्रिषु पुनः ॥
अन्यान्योपासकानान्तु गतीः क्षुद्राः पृथक् पृथक् ॥१६॥
पद्येषु षड्विंशत्यादौ स्वभक्तेः कीर्तिर्वर्णनम् ॥
अध्यायान्तिमे पद्ये उपसंहृतिद्योतनम् ॥१७॥
"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः" [१] ॥१८॥
एवं हि भक्तियोगस्य सारोऽयं समुदाहृतः ॥

(उपसंहारः)

सर्वविद्येश्वरी भक्तिः भक्तेः श्रीकृष्ण ईश्वरः ॥१९॥
तस्मिन् मतिगतिरतिः भवेदेकाश्रिता सदा ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतानवमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

१.भग.गीता ९।३४

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ दशमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

सर्वोपादानरूपो यः सर्वरूप उदाहृतः ॥
सर्वकर्ता च सर्वान्तर्यामी सर्वैस्तु साधनैः ॥१॥
लभ्यो गम्यः स्वकृपया सर्वातीतस्तथापि च ॥
विभूतिभिस्तु स्वीयस्य सर्वोपास्यत्वमावहन् ॥२॥
ज्ञानभक्त्यसमर्थानां ज्ञातुं सेवितुमंशतः ॥
स्वविभूतिस्वरूपेषु सर्वमूलं तमाश्रये ॥३॥

(वक्तृश्लोकसंख्याविमर्शः)

अध्यायोपक्रमश्चात्र भगवद्वचसैव हि ॥
प्रीयमाणाय पार्थाय हितकामेन बोधनम् ॥४॥
स सर्वादि सर्वभवः सर्वलोकमहेश्वरः ॥
असम्मूढतया तं वै ज्ञात्वा पापैः प्रमुच्यते ॥५॥
सर्वभूतपृथग्भावप्रवर्तनपरं हि तम् ॥
ज्ञात्वा चास्य विभूतिञ्च योगञ्च न विकम्पते ॥६॥
सप्तमश्लोकपर्यन्तं चैवं तु प्रतिपादिते ॥
अग्रे चतुर्भिः श्लोकैस्तु स्वस्य भक्तेः प्रधानता ॥७॥
अनन्यप्रीत्या भजने बुद्धियोगप्रदायिता ॥
अनन्यवरणीयत्वज्ञानात्माबुद्धियोगिता ॥८॥
तस्मिन्नेव तदंशस्य सर्वभावेन रुद्धता ॥
दशमस्कन्धविषयो यथा भागवते मतः ॥९॥
सर्वाधिक्येन तज्ज्ञानं माहात्म्यं तस्य कीर्तितम् ॥
तेन भक्तिप्रतिष्ठायामितरेषां विभूतिता ॥१०॥

ताश्चोपेक्ष्यानन्यभजने युक्तता बुद्धियोगिता ॥
पार्थस्य द्वादशादूर्ध्वं पद्यैरष्टभिरर्थना ॥११॥
विभूतियोगयोः तावद् उपदेशाय श्रीमुखात् ॥
लोकेऽस्मिन्स्वभूतीनां तदूर्ध्वं वर्णनं मतम् ॥१२॥
अष्टसप्ततिसंख्याकानां प्रधानतया पुनः ॥
असंख्येयत्वमेतासां नाम्ना रूपेण सर्वथा ॥१३॥
उपसंहरता चोक्ता स्वमुखात् तदगण्यता ॥
न स्वस्य तत्राऽसामर्थ्यात् किन्त्वानन्त्यादिति स्थितिः ॥१४॥
उद्देशोऽत्र त्रयोविंशपद्यैरेवं निरूपितः ॥
"नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतिनां परन्तप! ॥१५॥
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥
यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥१६॥
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन! ॥१७॥
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमैकांशेन स्थितो जगत्"[1] ॥
मूलरूपेण कृष्णेन स्वबोध्यत्वप्रधानता ॥१८॥
स्वसंन्निधौ विभूतिनामप्रधानत्वद्योतनम् ॥
वक्तुर्माहात्म्यज्ञानेऽस्य पर्यवसानमेव हि ॥१९॥
अनन्यभक्तिसिद्ध्यर्थं भक्तिमूलानुधावनम् ॥
इत्येवं वक्तृश्लोकानां विमर्शोऽत्र निरूपितः ॥२०॥

(अत्र शंकासमाधाने)

आशंका जायते चात्र वक्तुर्वै ब्रह्मताथवा ॥
विभूतिनां यतो वक्ता **"वृष्णिषु वासुदेव हि"**[2] ॥२१॥

१.भग.गीता १०।४०-४२
२.द्रष्ट.भग.गीता १०।३७

वक्ति तस्मात्समाधानं ज्ञातव्यमिह सर्वथा ॥
वार्ष्णेयबुद्धिः श्रीकृष्णे ब्रह्मबुद्धिविवर्जिता ॥२२॥
विभूतित्वं तु तस्यापि विभावितस्वरूपतः ॥
आपादयति यस्मात्तु "**ये यथा मां प्रपद्यते ॥२३॥**
भजामि तान् तथैवाहमि"[३]ति सिद्धान्ततः स्फुटा ॥
शंकापरापि पार्थस्तु ब्रह्मबुद्धया हि भक्तिमान् ॥२४॥
कुतो विभूतिज्ञानायोत्सुक्यात् प्रार्थनापरः ? ॥
इति चेत् तदयुक्तं हि पार्थो भक्तः सखा तथा ॥२५॥
भजनीयसख्युर्माहात्म्यज्ञानश्रवणप्रेमवान् ॥
भक्तिर्हि नवधा भिन्ना त्रिकं तन्नामसेवनम् ॥२६॥
द्वितीयन्तु त्रिकं रूपसेवनात्मकमेव हि ॥
तृतीयन्तु त्रिकं भक्तेर्भक्तभावात्मकं मतम् ॥२७॥
आद्यं माहात्म्यज्ञानोपयोगि स्यात् तेन सेव्यता ॥
सेवातः स्नेहसिद्धिस्तु तद्दार्ढ्याय पुनस्ततः ॥२८॥
भजनीये हृद्भावास्तु दास्यसख्यात्मनोऽर्पणम् ॥
विभूतीनां च माहात्म्यज्ञानायांगत्ववर्णना ॥२९॥
मूलरूपेण सेव्यत्वसिद्धये पादसेवना ॥
अर्चनं वन्दनं भक्तावपेक्ष्यन्ते यतः पुनः ॥३०॥
सेवनादेव सञ्जातप्रेम्णो दार्ढ्याय भावनाः ॥
दास्यादिरूपा सम्प्रोक्ताः लीलावैशिष्ट्यद्योतकाः ॥३१॥
अन्यथा तु स्वरूपैकनिष्ठायां लयशक्यता ॥
तथा केवललीलातो यथा संसृतिशक्यता ॥३२॥
लीलाविशिष्टब्रह्मणो भक्तिः सर्वातिशायिनी ॥
स्वरूपलीलयोस्तस्मान्मते सेवाकथे यतः ॥३३॥
विभूतिज्ञानयोगेन भगवत्प्राप्तिरप्यतः ॥

३.द्रष्ट.भग.गीता ४।११

भव्याय भक्तिभावाय भवितेति वर्णनम् ॥३४॥

(उपसंहारः)

स्वमाहात्म्यविभूतीनां बुद्धियोगाय दर्शकः ॥
प्रियः श्रीकृष्णः संसेव्यः सदा मतिरतिप्रदः ॥३५॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतादशमाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ एकादशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

दिव्यदृष्ट्यानन्यभक्त्या विश्वरूपत्वदर्शकम् ॥
तमेकञ्चानेकतया भातं कृष्णं नमाम्यहम् ॥१॥

(प्रतिपाद्यविषयः)

सर्वात्मता त्रिधा सच्चिदानन्दपरमात्मनः ॥
सत्तया भानभावाभ्यां तस्य मार्गप्रभेदतः ॥२॥
"**बहुस्यामहमेको**"[१] हीत्युक्ता श्रौती ह्यनेकता ॥
त्रिधा सम्प्रत्ययं सत्त्वभानभावप्रयोजितः ॥३॥
प्रमेयरूपा त्वाद्या वै द्वितीया मानदृश्यता ॥
मानातीतेऽप्रमेयेऽपि तृतीया भक्तिभावतः ॥४॥
परोक्षब्रह्मज्ञानं तु श्रीकृष्णे भक्तिसाधकम् ॥
कृष्णेऽपरोक्षे ब्रह्मत्वसाक्षात्कारस्तु बाधकः ॥५॥
प्रेष्ठात्मनि परमत्वनिरासकतया पुनः ॥
स्वात्मनि भजनीयत्वप्रतीत्यापि तथैव च ॥६॥
भजनीयस्य भक्तिर्हि न भक्तेच्छा कृता मता ॥
भजनीयकृतवरणेन भक्तेष्वाविर्भवेद् यतः ॥७॥
वृणुते परमात्मैव जीवात्मानं स्वभक्तये ॥
"**यमेव वृणुते तस्य तनुं विवृणुते हि स्वाम्**"[२] ॥८॥
एतत्तनोर्विवरणं द्वेधा साक्षात्परोक्षतः ॥

१.छान्दो.उप.६।२।३
२.कठो.उप.१।२।२३

अन्त्यो विभूतियोगेन परमत्वनिदर्शनम् ॥९॥
लीलावैशिष्ट्यज्ञानेन भक्तौ तस्योपकारिता ॥
परमात्मनः स्वरूपे यद् विश्वात्मत्वदर्शनम् ॥१०॥
भक्तौ भीतिकरं तत्तु परमात्मत्ववारकम् ॥
दर्शयित्वापि स्वात्मनं चेद् भावस्यापि रक्षणम् ॥११॥
आचार्योक्तानुसन्धाने तदेतत्तु सुदुर्लभम् ॥
"**ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं तस्मान्नास्त्यधिकः परः**"[३] ॥१२॥
सख्युः पार्थस्य कृष्णेन प्रशंसेह प्रकीर्तिता ॥
अध्यायान्ते स्वमुखेन गीतायां च प्रयोजिता ॥१३॥
"**सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ॥**
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥१४॥
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन नचेज्यया ॥
शक्य एवंविधो द्रष्टुं द्रष्टवानसि मां यथा ॥१५॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन ! ॥
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ![४] ॥१६॥
विश्वरूपदर्शनात्प्राग यच्चोक्तं भगवतैव हि ॥
"**न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ॥१७॥**
दिव्यं ददामि ते चक्षु"[५] रित्यनेनैकवाक्यता ॥
आतश्चानन्यभक्तिर्हि दिव्यदृष्ट्यात्मिकैव हि ॥१८॥
तस्यान्तु भीतिजननं "**भयेन व्यथितं मनः**"[६] ॥
अर्जुनोक्तप्रमाणेन विज्ञेयं निश्चिन्तत्विह ॥१९॥
प्रार्थिते दर्शने पश्चाद् दर्शनेन भयं कुतः ॥

३.त.दी.नि.१।१४
४.भग.गीता ११।५२ - ५५
५.भग.गीता ११।८
६.भग.गीता ११।४५

इति चेदुच्यते भक्तत्वेन ज्ञातोऽप्यसंशयः ॥२०॥
सख्यभवात्तु सख्यौ वै मनश्चाञ्चल्यहेतुकः ॥
नाविश्वासात्तु भक्तस्य प्रार्थनाभीति पार्थगे ॥२१॥

(अधिकरणांगविमर्शः)

पूर्वाध्यायसिद्धेऽर्थे संशयाभावतो पुनः ॥
पूर्वपक्षो न कोऽप्यत्र नोत्तरापेक्षितापि वा ॥२२॥

(वक्तृश्लोकसंख्याविमर्शः)

अध्यायोपक्रमः तावत् चतुर्भिरर्जुनस्य वै ॥
निरस्तमोहतोक्तिश्च परत्वांगीकृतिः पुनः ॥२३॥
श्रीकृष्णविषया भक्तिः साक्षाद्दर्शनकामना ॥
प्रार्थना भगवतश्चापि एताः वै स्वीकृतीः तथा ॥२४॥
श्लोकैश्चतुर्भिस्तेनोर्ध्वं संजयेन च वर्णनम् ॥
भगवद्दिव्यरूपस्य षड्भिश्शलोकैर्निरूपणम् ॥२५॥
कृष्णस्तवोऽत्र पुरुषसूक्तसंख्यासमैः कृतः ॥
पार्थेन श्रुतिस्मृत्येकवाक्यतायै न संशयः ॥२६॥
उपसंहाररूपेण पद्यं पार्थोक्तमेव च ॥
ततः त्रिभिः कृष्णवाक्यैः स्वसख्युः प्रेरणं तथा ॥२७॥
स्वलीलानुभावमत्या युद्धे धर्माक्षतिः मता ॥
ततोहि वचनञ्चैकं संजयोक्तमथापि वै ॥२८॥
पार्थदैन्यवर्णनाय कृष्णानुसरणाय च ॥
ततः पञ्चदशैः श्लोकैः भगवत्स्तवनं परम् ॥२९॥
तन्माहात्म्यप्रत्यभिज्ञा क्षमाप्रार्थनमेव च ॥
सख्यस्वभावनिर्वाहप्रार्थना मानुषात् तनोः ॥३०॥
श्लोकैस्त्रिभिस्तु कृष्णोक्तिः पार्थस्याश्वासनात्मिका ॥

तदूर्ध्वं सञ्जस्यैकपद्येन पूर्वरूपता ॥३१॥
सौम्यरूपधारणात्तु पार्थे स्वप्रकृतिस्थता ॥
परत्वोक्तिस्तु पद्येनैकेनात्रापि बोधिता ॥३२॥
अध्यायस्योपसंहारे भगवद्वचनानि हि ॥
श्लोकैश्चतुर्भिरुक्तानि तस्मिंश्च भक्तलक्षणम् ॥३३॥
पञ्चधर्मा द्योतिताऽत्र भगवत्प्रापकाः हि ये ॥
भगवत्कर्मकरणं तत्राद्यं तत्परत्वधीः ॥३४॥
भक्तिश्चाहंममकृतसंगेन रहिता पुनः ॥
भगल्लीलयाविर्भूतेषु वैरवर्जनम् ॥३५॥
विश्वरूपदर्शनस्य फलश्रुतिरुदीरिता ॥
गीतैकादशाध्याये हि भक्तियोगपरेऽत्र हि ॥३६॥

(उपसंहारः)

बुद्धिवाण्योः सदा कृष्ण ! विश्वरूपतया स्थिरः ॥
भव ह्यन्नेत्रयोः नैवं सेव्यरूपरुचेर्मम ॥३७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताएकादशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ द्वादशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

भक्तियोगस्य वक्तारं कृष्णं योगेश्वरेश्वरम् ॥
तत्पुष्ट्या भक्तियोगेन योजकं वल्लभं नुमः ॥१॥

(श्लोकवक्तृसंख्यानिरूपणम्)

प्रश्नोपक्रम एकेन व्यक्ताव्यक्तप्रभेदतः ॥
उपासनायां द्वैविद्ध्यं कतरत्तत्रोत्तमं मतम् ॥२॥
व्यक्तस्यैव हरेर्भक्ताः श्रेष्ठाः भगवतो मताः ॥
अग्रिमैकेन, श्लोकैस्तु त्रिभिरव्यक्तनिर्णयः ॥३॥
उपाये क्लेशरूपत्वमुपेयस्यापि क्लिष्टता ॥
षष्ठादारभ्य श्लोकेषु त्रिषु चाक्लेशवर्णनम् ॥४॥
तत्र चित्तासमाधानेऽनुकल्पानां ह्यनेकता ॥
अभ्यासकर्मतत्फलत्यागोक्तिः त्रिषु रूपिता ॥५॥
द्वादशे पुनरेतेषां श्रेयःसम्पादने हि यद् ॥
उत्तरोत्तरश्रैष्ठ्यं हि शान्तिं यावत्प्रकीर्तितम् ॥६॥
त्रयोदशाद् उपान्त्ये हि श्लोके भक्तस्य लक्षणम् ॥
विंशतितमेऽत्र धर्म्यामृतपातुः स्तुतिः वरा ॥७॥
अतीवप्रियतोक्त्या चाध्यायस्येहोपसंहृतिः ॥

(अध्यायाधिकरणांगविमर्शः)

विषयो भक्तियोगोऽत्र कतरः श्रेष्ठः संशयः ॥८॥
विभोर्निराकृतेः यद्वा साकृतेस्तत्परस्य वा ? ॥

पूर्वपक्षो विभेदेऽपि धामिधाम्नोरभेदतः ॥९॥
अथवा साकृतेरज्ञप्रसादायोपकारिता ॥
विभोर्निराकृतेर्यस्मान्मायोपाधिविवर्जनात् ॥१०॥
श्रेष्ठस्तज्ज्ञानयोगोऽन्यव्यावहारिक श्रेष्ठता ॥
इतिचेन्नश्रुतेर्वाक्याद् "**ब्रह्मरूपद्वयोक्तितः**
मूर्तञ्चामूर्तमेवञ्च मर्त्यञ्चामृतं तथा ॥११॥
स्थिरञ्चास्थिरमेवञ्च"[१] विरुद्धद्वयरूपतः ॥
उभयव्यपदेशात्तु सर्पकुण्डलन्यायतः ॥
मतं ततोह्यभेदेऽपि जीवोद्धाराकृतिग्रहः ॥१२॥
यश्चोद्यमः परस्येह स्वभक्तोद्धृतये परः ॥
अक्षरस्य तु कौटस्थ्याद् ज्ञानक्लेशेन चोद्धृतिः ॥१३॥
क्लेशोधिकतरायोक्तः अल्पसामर्थ्यतः सदा ॥
जीवस्येति सिद्धान्तः संगतिस्त्वथ चिन्त्यते ॥१४॥
ब्रह्माण्डमूर्तितत्लीला चाक्षरे दिव्यदृष्टितः ॥
दृष्टा कृष्णे भगवति योऽक्षरे प्रकटः पुमान् ॥१५॥
तत्राक्षरे निलीनस्य प्रकटस्य परस्य वा ॥
भक्तेरेकतरोत्कर्षनिर्धारायोत्तरो मतः ॥१६॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरग्रे ब्रह्मतादात्म्यवर्णने ॥
बीजोपदेशात् पल्लवने त्रयोदशगतं भवेत् ॥१७॥

(भक्तिस्तदुपायस्वरूपं च)

अभ्यासज्ञानध्यानानि उत्तरश्लोकगानि वै ॥
अभ्यासो नित्ययोगेन ज्ञानं श्रद्धा दृढा पुनः ॥१८॥
तया तत्र मनोयोगः ध्यानं भक्त्यात्मकं भवेत् ॥
षष्ठे कर्मफलत्यागो ज्ञानं तस्मात्परं मतम् ॥१९॥

१.द्रष्ट.बृह.उप.२।३।१

ध्यानं चानन्ययोगेन तदुपासनमीरितम्॥
तादृशो हि समुद्धारो मनोधीचेतसां पुनः॥२०॥
योगतस्तेन तत्रैव निवासो निश्चितो मतः॥
त्रयाणामनिरोधे तु तदुपायोपदेशना॥२१॥
सृष्टौ लीलामतिर्भक्तिः सैकान्तध्यानसम्भवा॥
अत्याज्यकर्मणां तावदनुष्ठाने तदर्थिता॥२२॥
संयमोऽहंममतेः भवेद् दुःखसुखक्षमी॥
तदा लीलामतौ सत्यां तत्कर्तुर्ज्ञानसम्भवः॥२३॥
तदुपायानुकल्पेषु चाद्योऽभ्यासः प्रकीर्तितः॥
ज्ञानध्याने फलत्यागोऽत्याज्यानां कर्मणां पुनः॥२४॥
उत्तरोत्तरकर्तव्यत्वेन तेषां परिग्रहः॥
पूर्वं कर्मफलत्यागस्ततो ध्यानं चिकीर्षितम्॥२५॥
ज्ञानं तेनैव लीलायाः कर्तुश्च श्रवणादिना॥
अभ्यासाद् जायते सम्यक् ततो भक्तिर्हि श्रेयसी॥२६॥
इतिकर्तव्यता चैषामुपदिष्टा त्रयोदशे॥
सर्वभूतेषु ह्यद्वेषो मैत्री च करुणा तथा॥२७॥
संयमोऽहंममतेः सुखदुःखसहिष्णुता॥
अभ्यासोपायरूपस्य चानुष्ठाने चिकीर्षिताः॥२८॥
ज्ञानोपाये तु सन्तोषो योगसातत्यमेव च॥
यतात्मनिश्चये दाढर्च्यं मनोबुद्धिसमर्पणम्॥२९॥
इतिकर्तव्यता ज्ञानोपायांगत्वेन चोदिताः॥
ध्यानकाले त्वनुद्वेगः स्वस्मादपि तथेतरे॥३०॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्ते हि ध्यानशक्यता॥
तथा कर्मफलत्यागानुष्ठाने यद् अपेक्षितम्॥३१॥
नैरपेक्ष्यं हि शुचिता दाक्ष्यं चापि तथैव हि॥
औदासीन्यं च कृष्णेनेतिकर्तव्यतोदिता॥३२॥

कृतकर्मफलाकांक्षाराहित्ये कर्मतः शुचिः॥
बुद्धिभेदकरं कर्म नैव कार्यं हि दक्षता॥३३॥
औदासीन्ये व्यथाभावः आरब्धस्यान्तयापनम्॥
अनारब्धे त्वप्रयत्नः फलत्यागेतिकार्यता॥३४॥
हर्षद्वेषौ शोककामौ व्यथाभावाय कांक्षितौ॥
शास्त्रीयकर्मसु तावच्छुभाशुभविवर्जनम्॥३५॥
बाह्येतु व्यवहारे हि शत्रुमित्रसमानता॥
मानापमानयोः मनसि क्षोभस्यापि विसर्जनम्॥३६॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु साम्यं तद् दैहिकं मतम्॥
निन्दास्तुतिसमत्वेतु शक्यं मौनावलम्बनम्॥३७॥
यदृच्छालाभसन्तुष्ट्याऽस्वामिता सिद्ध्यति गृहे॥
एवं कर्मफलत्यागश्चेत् तदर्थो भवेद् यदा॥३८॥
भक्तौ तस्य मतिस्थैर्यं विवेकादित्रिकोपमम्॥
ऐतैरुपायैः भक्तिर्हि सिध्यति भगवत्प्रिया॥३९॥

(उपसंहारः)

कृष्णवल्लभभक्त्या हि भक्तियोगोऽत्र वर्णितः॥
दुष्टं यत् तन्ममाज्ञानान्नतु तद्भक्तिहेतुकम्॥४०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताद्वादशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ त्रयोदशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

परं ब्रह्म परं धाम प्रधानपुरुषोत्तमम् ॥
श्रीकृष्णं सच्चिदानन्दं संनमामि सदा मुदा ॥१॥

(प्रतिपाद्यविषयविमर्शः)

द्वादशे भजनीयस्य रूपं निर्धारितं पुनः ॥
त्रयोदशेऽत्राध्याये तु पाठभेदो हि दृश्यते ॥२॥
चतुस्त्रिंशत्पञ्चत्रिंशच्छ्लोकाः वा पाठभेदतः ॥
पार्थस्य प्रश्नसहितो रहितो वा ह्युपक्रमः ॥३॥
पार्थप्रच्छा त्रियुग्मेषु त्वाद्यौ प्रकृतिपुरुषौ ॥
ज्ञानज्ञेये तथा क्षेत्रक्षेत्रज्ञाविति ज्ञिप्सितौ ॥४॥
कर्मादिमार्गत्रैविध्यं ब्रह्मत्रैविध्यहेतुकम् ॥
भक्तिस्त्रैविध्यसापेक्षा ह्यन्यथा कर्मज्ञानयोः ॥५॥
तदर्थमत्राध्याये तु ब्रह्मत्रैविध्यवर्णनम् ॥
भक्तेर्हि पूरकांशोऽयं श्वेताश्वतरचोदितः ॥६॥
तथाहि -

''एतद् ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदनीयं हि किञ्चित् ॥
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मेतत्'' [१] ॥७॥

''संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च

१.श्वेता.उप.१।१२

व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः ॥
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात्
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः'' [२] ॥८॥

कर्ममार्गे तु देशादिषट्कसापेक्षता मता ॥
सात्वाधिभौतिकी प्रोक्ता सा तत्त्रैविध्यमध्यगा ॥९॥
ज्ञानमार्गे न नियता चाधिदैविकमूलता ॥
''उद्धरेदात्मनात्मानम्'' [३] इति गीताप्रमाणतः ॥१०॥
भक्तिमार्गे ह्यपेक्ष्यन्ते जडजीवेश्वराः सदा ॥
जडे हि ममताबन्धो जीवेऽहन्ताकृतो यथा ॥११॥
उभयोरपि तादर्थ्यात् सेवने भक्तिमार्गिता ॥
भक्तौ विभावो भगवान् भक्तिः सेवानुभावता ॥१२॥
भजनीयेऽनन्यभावो भक्तिरेवेति निश्चयः ॥
यद्यन्यन्न भवेदत्रानन्यभावोप्यसम्भवः ॥१३॥
ब्रह्मणश्चाधिभूतं वै रूपम् अन्यद् मतं त्विह ॥
ब्रह्मणोऽतो तु द्वे रूपे भक्तिमार्गे ह्यपेक्षिते ॥१४॥
भजनीयाभजनीये वै तेन भक्तिः प्रसिद्ध्यति ॥
सर्वस्य जगतश्चास्याभजनीयब्रह्मरूपता ॥१५॥
ब्रह्मात्मकत्वज्ञानं हि मूले कृष्णे च भक्तिकृद् ॥

(वक्तृश्लोकसंख्याविमर्शः)

प्रथमाद् वा द्वितीयस्मात् श्लोकाद् भगवदुक्तयः ॥१६॥
उपक्रमस्त्वाद्येनेह श्लोकेनैकेन वर्तते ॥
क्षेत्रस्य वर्णनञ्चात्र सविकारमुदाहृतम् ॥१७॥
मध्ये तु ज्ञानज्ञेयार्थश्लोकैर्द्वादशभिस्त्विह ॥

२.श्वेता.उप.१।८
३.भग.गीता ६।५

क्षेत्रक्षेत्रज्ञवर्णनं न पृथग्ब्रह्मवर्णनात्॥१८।
क्षेत्रं ब्रह्मात्मकं कार्यं स्वोपादानाविभेदतः॥
ब्रह्मांशत्वेन क्षेत्रज्ञो मतो ब्रह्मात्मकः सदा॥१९॥
सत्ता वै प्रकृतिः पुरुषश्चैतन्यं ब्रह्मणो ह्युभे॥
सच्चिदानन्दरूपस्यातोऽनादी उभावपि॥२०॥
प्रकृतेर्गुणवैषम्यं विकारोऽविकृतेः पुनः॥
चैतन्यं प्राकृतगुणैर्मिश्रितं 'जीव'संज्ञितम्॥२१॥
पुरुषः प्रकृतिस्थोऽसौ भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्॥
कारणे गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥२२॥
गीतायामेतदेवोक्तं ज्ञेया तु प्रकृतिस्ततः॥
ज्ञानं चैतन्यधर्मिकं तद् ज्ञात्वा मुक्तो भवेत् पुनः॥२३॥
''कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते॥
पुरुषसुखदुःखेषु भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥२४॥
य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैस्सदा॥
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते॥२५॥
उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः''[४]॥
परमानन्दरूपेण जीवान्तर्यामितां भजन्॥२६॥
''समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्॥
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥२७॥
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्॥
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्''[५]॥२८॥

(अधिकरणांगविमर्शः)

आद्यषट्कं सूत्ररूपं द्वितीये वृत्तिरूपता॥

४.भग.गीता १३।२०,२३,२२
५.भग.गीता १३।२७-२८

भाष्यरूपे तृतीयेतु पञ्चांगानां न भिन्नता॥२९॥
वक्तृश्रोत्रोरैकमत्यात् संशयादेरभावतः॥
विशेषज्ञानवाञ्छातः समाधानं भवेदिह॥३०॥

(उपसंहारः)

भक्तावपेक्षितब्रह्मत्रैविध्यस्योपदेशना॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञभेदस्याश्रयाभेदेन योगता॥३१॥
अन्यथा क्षेत्रमिथ्यात्वे क्षेत्रज्ञस्वात्ममुक्तये॥
त्रैविध्याज्ञानतो ब्रह्माप्राप्तौ मुक्तेरनिष्टता॥३२॥
मदीयक्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागेऽखण्डितं सदा॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञेश्वरं तं नमामि भक्तिसिद्धये॥३३॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतात्रयोदशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ चतुर्दशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

गुणत्रयविभागस्याकर्ता कर्ता च यो विभुः ॥
सांख्यज्ञानोपदेशेन मुक्तिदाता स्वयं प्रभु ॥१॥
स्वरूपप्रथनाच्चापि भक्तिदाता सएव हि ॥
श्रीकृष्णं सांख्यभक्तिभ्यां गम्यमेकं वयं नुमः ॥२॥

(प्रतिपाद्यविषयविमर्शः)

गुणत्रयसमाहाररूपा तु प्रकृतिर्मता ॥
प्राकृतं सगुणं सर्वं संकीर्णगुणवद् मतम् ॥३॥
अतो हि संशयभ्रान्ती निश्चयः तैर्हि जायते ॥
रागद्वेषशोकमोहाः चैकस्मिन्विषयेऽपि वै ॥४॥
संकीर्णगुणवद्विषयाद् बन्धनन्तूपजायते ॥
गुणासक्तस्य जीवस्य तद्वैराग्याद् विमुक्तता ॥५॥
चिदात्मा निर्गुणः प्रोक्तः परमात्मापि वै तथा ॥
नैर्गुण्यमेतयोर्भिन्नं भावाभावविभेदतः ॥६॥
चिदात्मनस्तु प्रकृतेस्तादात्म्याध्यासतः सदा ॥
प्राकृतगुणाश्रयाभासो नैर्गुण्यन्तु स्वभावतः ॥७॥
अन्यादृशन्तु नैर्गुण्यं मन्तव्यं परमात्मनः ॥
प्रकृतेस्तु गुणाः सर्वे निरानन्दात्मकाः मताः ॥८॥
सच्चिदानन्दैकरसो धर्मी सो भगवान् यतः ॥
धर्मास्तस्य तथा सच्चिदानन्दैकरसाः पुनः ॥९॥
प्राकृतेषु पदार्थेषु न चैवंविधतेष्यते ॥
तस्मान्प्राकृतद्रव्येषु भेदो गुणगुणिनोर्मतः ॥१०॥

सच्चिदानन्दैकरसाः गुणाः सर्वे तु ब्रह्मणः ॥
चिदानन्दतिरोधानात् प्राकृतत्वमुदीर्यते ॥११॥
न चानन्दैकरसतायां संकीर्णत्वसम्भवः ॥
संकीर्णतेतरपार्थक्यभावापत्तिजा मता ॥१२॥
गुणोद्भूतविकारेषु गुणसंकीर्णता कृता ॥
दोषोऽयमेव प्रकृतेर्गुणानां वर्णितो बुधैः ॥१३॥
नैर्गुण्यं यद् द्विधा चोक्तं भेदाभेदविभेदतः ॥
स्वभिन्नस्वगुणाधारः 'सगुण'व्यपदेशभाक् ॥१४॥
ईदृग्गुणानाश्रयत्वं नैर्गुण्यं कथ्यते पुनः ॥
चिदात्मा प्राकृतगुणानाधारत्वात्तु निर्गुणः ॥१५॥
अखण्डैकरसे तस्मिन् सच्चिदानन्दब्रह्मणि ॥
सत्ताचैतन्यरत्यादिधर्माः प्रादुर्भवन्ति हि ॥१६॥
धर्मेभ्यस्त्रिगुणास्तेषां समाहारात्प्रधानता ॥
अव्यक्ता जडसृष्टेर्हि प्रकृतिर्व्यपदिश्यते ॥१७॥
सतः सात्त्विकं तच्चितो राजसं च
तथानन्दतस्तामसं चापि जातम् ॥
गुणानां हि सैतत्समाहाररूपा ॥
गुणक्षोभवैषम्यतस्तद्विकाराः ॥१८॥
विकारेषु सत्सु चिदंशप्रवेशे
ह्यविद्याख्यशक्तेस्तदध्यासमूलाः ॥
चिदंशेषु देहेन्द्रियप्राणबुद्धि -
मनोऽहंकृतिः स्वस्वरूपभ्रमाद् वै ॥१९॥
गुणेष्वेषु रक्तौ भवेदेषु बद्धो
विरक्तः पुनर्मुक्तिसौख्येन युक्तः ॥
विरक्त्यैव स्वस्मात्पृथग्बुद्धितो वै
प्रसंख्यातुमात्मा विवेकक्षमो हि ॥२०॥

(अधिकरणांगविमर्शः)

भाष्यरूपे तु षट्केऽन्तर्गताध्याये न संशयः ॥
सूत्रोपमे हि षट्के वै पूर्वपक्षनिराकृतिः ॥२१॥

(वक्तृश्लोकसंख्याविमर्शः)

अध्यायोपक्रमे श्लोकद्वये सांख्यस्तुतिः कृता ॥
भगवतैतस्य ज्ञानात्तु स्वेनैव नित्यमुक्तता ॥२२॥
जन्ममृत्युव्यथाभावात् ततो ज्ञानोपदेशना ॥
सर्गादौ प्राकृते स्वच्छे पुंश्चैतन्योपसंक्रमात् ॥२३॥
योनित्वं महतः स्वस्य बीजरूपा च पितृता ॥
महत्यनुगताः ये वै गुणाः प्रकृतितः पुनः ॥२४॥
तेन तत्र तु संक्रान्तं चैतन्यं बध्यते भृशम् ॥
मुक्तेश्च हेतुस्तत्रैव गुणः सात्त्विक उच्यते ॥२५॥
रजोगुणो रागहेतुः कर्मबद्धं करोत्यमुम् ॥
तामसो मोहजननाद् अज्ञानेनैव बन्धकः ॥२६॥
तृतीयश्लोकतः श्लोकैः षोडशैर्हि निरूपणम् ॥
प्रकृतेस्त्रिगुणानां च कार्याणां च सविस्तरम् ॥२७॥
एकोनविंशविंशयोश्च दृश्याद् द्रष्ट्रविवेकतः ॥
त्रैगुण्यातिक्रमात्पूर्वसदृशी चेशतुल्यता ॥२८॥
श्लोके तु चैकविंशे हि पार्थप्रच्छा निरूपिता ॥
प्रकृतेर्गुणातिक्रमणे ह्याचारविषये पुनः ॥२९॥
द्वाविंशात्पञ्चविंशं वै यावत्तस्य निरूपणम् ॥
सांख्यसिद्धान्तानुगतं गुणातीतत्वकारणम् ॥३०॥
कृष्णे चाव्यभिचारिण्या भक्त्या चापि तथैव हि ॥
स्वात्मसौख्यं तदेवेह ब्रह्मसौख्येन भूयसा ॥३१॥
जीवो भक्तोऽनुभवतीत्यध्यायोपसंहृतिः ॥

श्रीमदाचार्यचरणेनातो हि बालबोधगे ॥३२॥
उपदेशेऽस्य विषयस्य संकलनं नियोजितम् ॥
"मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परतः स्वतः ॥३३॥
द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्ययोगौ प्रकीर्तितौ ॥
त्यागात्यागविभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः ॥३४॥
पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते ॥
अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ ॥३५॥
नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः" [१] ॥
परतो मोक्षलाभार्थं जीवसंसारबाधनात् ॥३६॥
"समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम् ॥
अतदीयतया चापि केवलश्चेत् समाश्रितः ॥
तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्या सर्वं समाचरेत्" [२] ॥३७॥
एवं निरूपणेनापि बालबोधादसंशयः ॥
अध्यायार्थः स्फुटो भाति संवादश्चेतयोर्द्वयोः ॥३८॥

(उपसंहारः)

सांख्ययोगोपदेष्ट्रा हि साम्यं येभ्यस्तु रोचते
भवन्तु स्वात्मसौख्याय तत्परास्तस्य लीलया ॥३९॥
कृपालोस्तस्य या लीला भक्तियोगप्रदा हि या ॥
तया तत्सौख्यलाभाय मनो मेऽतिसमुत्सुकः ॥४०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताचतुर्दशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

१.बा.बो.५ - १५
२.बा.बो.१८ - १९

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ पञ्चदशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

स्वयोगानुग्रहप्राप्य-पुरुषोत्तमरूपिणे ॥
भक्तभावानुरूपाय श्रीकृष्णाय नमोनमः ॥१॥

(प्रतिपाद्यविषयोपन्यासः)

"**आत्मरत्यात्ममिथुनात्मानन्दःस्वराट्**"[१] प्रभुः ॥
श्रीकृष्णः सच्चिदानन्दः पुरुषोत्तम उच्यते ॥२॥
स्वसत्ताचेतनानन्त्यधर्मधाम्न्यक्षरे स्वयम् ॥
कालकर्मस्वभावैर्हि प्रधानपुरुषात्मके ॥३॥
नामरूपकर्मभेदैः स्वीयैः स्वस्मिन्समुद्धृतैः ॥
रममाणो जीवजडान्तर्यामिरूपभेदतः ॥४॥
वाङ्मनोऽगोचरश्चान्यैः कृपाभक्तिविवर्जितैः ॥
अध्याये संशयः पूर्वपक्षो वा नहि शक्यते ॥५॥
अतोऽन्योक्तिः समग्रेऽत्राप्यध्याये नास्ति कस्यचित् ॥
भगवद्वचनान्येव तेनैवं योजितानि हि ॥६॥
"**नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्**"[२] ॥
श्रुत्युक्तब्रह्मणोऽद्वैते नोर्ध्वमूलत्वसंगतिः ॥७॥
इति चेन्नहि तद्युक्तं भेदाद् लीलास्वरूपयोः ॥
स्वरूपतो ब्रह्मैतादृग् लीलया ह्यतथापि च ॥८॥

१.छान्दो.उप.७।२५।२
२.महाना.उप.१०

(ऊर्ध्वमूलतायाः श्रुतिवाक्येनोपद्बलनम्)

"**ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तद् देवान् असृजत. तद् देवान् सृष्ट्वा एषु लोकेषु व्यारोहयद् अस्मिन्नेव लोके अग्निं, वायुम् अन्तरिक्षे, दिव्येव सूर्यम्. अथ ये अत ऊर्ध्वा लोका तद् या अत ऊर्ध्वा देवताः तेषु ता देवता व्यारोहत्. स यथा ह वा इम आविर्लोकाः इमाश्च देवता, एवं हैव त आविर्लोकाः, ताश्च देवता येषु ता देवता व्यारोहयत्. अथ ब्रह्मैव परार्धम् अगच्छत्. तत् परार्धं गत्वा ऐक्षत 'कथंनु इमान् लोकान् प्रत्येवेयायम्' इति तद् द्वाभ्यामेव प्रत्यवैद् रूपेण चैव नाम्ना च. स यस्य नामास्ति तन्नाम. यस्यो अपि नाम नास्ति यद् वेद रूपेण 'इदं रूपम्' इति तद्रूपम्. एतावद् वा इदं यावद् रूपञ्चेव नाम च. ते हैतो ब्रह्मणो महती अब्भ्वे**"[३].

अतोहि लीलयैवोर्ध्वाधोभावो न विरुध्यते ॥
अतोहि नामरूपाख्या सृष्टिर्वै पुरुषोत्तमात् ॥९॥
अश्वत्थताव्ययस्यापि तथैव परिणामिता ॥
विरुद्धधर्माधारता या सा श्रुत्येकगोचरा ॥१०॥
"**द्वै वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तामूर्ते तथैव च ॥**
मर्त्यामृते स्थितं यच्च सच्च त्यं चे"[४] त्यनेकधा ॥११॥
ननु पार्थायोपदिष्टं तेनैतत्तु विरुद्धचते ॥

३.शतप.ब्रा.२।३।१-५
४.बृह.उप.२।३।१.

''त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुनः''[५] ॥१२॥
''गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति''[६] ॥
सागुण्यं वेदवेद्यस्य नैर्गुण्यं स्वस्य चात्रहि ॥१३॥
अत्र वेदविदां साकं स्वविदोरैक्यमुक्ति सा ॥
ह्यसंगतैव चाभाति तदिदं नहि साम्प्रतम् ॥१४॥
गुणातीतस्य तस्यैव गुणात्मत्वाच्च लीलया ॥
उक्तं भागवते तस्माद् **''निर्गुणस्य गुणात्मनः''**[७] ॥१५॥
स्वयञ्ज्योतिरिदं ब्रह्म तत्कथं शब्दगोचरम् ? ॥
इति चेत् तत् परं ब्रह्म स्वयं शब्दतयाऽभवत् ॥१६॥

तथाहि
''ते देवा इन्द्रम् अब्रुवन् 'इमं नः तावद् यज्ञं गोपाय... स ऋग्वेदो भूत्वा... यजुर्वेदो भूत्वा... सामवेद भूत्वा उत्तरतः परीत्य उपातिष्ठत्''[८]

वाङ्मनोऽगोचरस्यापि स्वप्रकाशस्य ब्रह्मणः ॥१७॥
स्वतो वेदात्मभावेन जातस्य स्वप्रकाश्यता ॥
वृक्षस्य सम्परिज्ञानं यथा पर्णैर्हि जायते ॥१८॥
वेदपर्णैः परिज्ञानम् अज्ञेयावाच्यब्रह्मणः ॥

(अव्ययाश्वत्थयोस्तादात्म्यविमर्शः)

शाखाश्चास्य वृक्षस्य त्रिगुणात्मप्रधानतः ॥१९॥
प्रसृताः अधस्तथोर्ध्वं च प्रवालाः विषयात्मकाः ॥
प्राकृतैरिन्द्रियैर्ग्राह्याः छादकाः सच्चिदात्मनः ॥२०॥

५.भग.गीता २।४५
६.भग.गीता १४।१९
७.भाग.पुरा.१०।२९।१४
८.ऐत.ब्राह्म.२।१९

ततो मूलस्वरूपं हि प्रवालेषु न लभ्यते ॥
अव्ययाश्रयणैव ह्यश्वत्थच्छेदप्रेरणम् ॥२१॥
तदुक्तमस्मदाचार्यैः सुबोधिन्यां विशेषतः ॥
''ब्रह्मरूपं जगज्ज्ञेयं जगतो व्यतिरिच्यते ॥२२॥
आसक्तिस्तु ततः कार्या मूले ब्रह्मणि सर्वथा''[९] ॥
तदर्थं मूलरूपस्य माहात्म्यज्ञानमिष्यते ॥२३॥
वेदादिशास्त्रतः तस्य कर्तव्यो निर्णयः सदा ॥
''रूपप्रपञ्चकरणाद् आसक्तस्वांशवारणे ॥२४॥
श्रुतिम् आत्मप्रसादाय चकारात्मानमेव स''[१०] ॥

(पुरुषोत्तमविदोः फलस्य विमर्शः)

प्रपञ्चविषयासक्तिराहित्येन तदर्थिता ॥२५॥
सिद्धा चेत् तत्पदं कीदृक् सालोक्यमथवा लयः ॥
सृष्टिरेषाखिला तत्र चाक्षरे धाम्नि तत्स्थितिः ॥२६॥
सालोक्यं सिद्धमेवात्र बन्धे मुक्तौ च नित्यशः ॥
लये तु ज्ञानमार्गात् को विशेषो वक्तुमिष्यते ? ॥२७॥
एतच्छंकासमाधानं तुर्यपञ्चमषष्ठसु ॥
कृतं सालोक्यरूपेण द्वेधा तद्धचक्षरं मतम् ॥२८॥
''द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं तस्माद् विलक्षणम्''[११] ॥
सृष्टिकृष्णावुभौ चास्मिन्नक्षरे समवस्थितौ ॥२९॥
''पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि''[१२] ॥
इति श्रुत्या तदेकस्मिन्पादे सृष्टिरिष्यते ॥३०॥

९.सुबो.२।९।३५
१०.त.दी.नि.२।१८
११.सि.मु.३
१२.ऋक्संहि.१०।९०।३

शिष्टेषु सृष्टवैलक्षण्यात् परस्य हि धामता॥
वैकुण्ठादिषु लोकेषु ब्राह्मेण तनुना परः॥३१॥
पुरुषोत्तमस्वरूपस्य लीलायाश्चापि सर्वथा॥
परमानन्दसम्प्राप्तिः 'पदमव्यय'संज्ञिता॥३२॥

(पुरुषोत्तमान्तर्याम्यक्षरस्वरूपविमर्शः)

सप्तमात्तु तदंशानाम् आचैकादशं पुनः॥
बाह्याभ्यन्तरकरणैर्बाहिर्मुख्ये तु मूढता॥३३॥
आत्मानन्दाभिमुख्येन पुरुषोत्तमयोगिता॥
सिद्धान्तमुक्तावल्यास्तु संगतिरियमीरिता॥३४॥
ततस्त्रिभिस्तु पद्यैस्तु जडसृष्टिनिरूपणम्॥
मध्ये चैकेन पद्येनोभयान्तर्यामिवर्णनम्॥३५॥
''अन्तर्याम्यक्षरं कृष्णो ब्रह्मभेदा'' [१३] विधानतः॥
पुरुषक्षरश्चेकपादेऽपरेष्वक्षरोक्तितः॥३६॥
तत्रोत्तमो हि पुरुषः परमात्मान्तर्यामी वै॥
क्षरातीतोऽक्षरात् श्रेष्ठः 'पुरुषोत्तम' उच्यते॥३७॥

(पुरुषोत्तमयोगो तत्कृतवरणसाध्यः इति विमर्शः)

पद्योपान्त्ये हरेः शक्ती विद्याविद्ये निरूपिते॥
पुरुषोऽविद्यया बद्धो मुक्तो भवति विद्यया॥३८॥
पुरुषोत्तम उभाभ्यान्तूद्धृतौ सर्वथा क्षमः॥
ईशावास्योपनिषदि चोक्तो ह्येतद्विनिर्णयः॥३९॥
''अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यां समुपासते॥
ततो भूयइव तमो य उ विद्यायां रताः॥४०॥
अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नः तद् विचचक्षिरे॥४१॥

१३.त.दी.नि.२।१२१

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह॥
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते'' [१४] **॥४२॥**
नाविद्यया विद्यया वा वरणेनैव लभ्यता॥
अतः चैकतरयापि लब्धिस्तत्कृपया पुनः॥४३॥
यतो 'भूयइवतमः' 'संमोह'पदबोधितः॥
असंमोहस्तु तस्यैककृपानैर्भयमेव हि॥४४॥
इति गुह्यतमो योगो कृष्णेनैवोदितः स्वतः॥
बुद्ध्वैतद् बुद्धिमत्ता वै तथाच कृतकृत्यता॥४५॥
कृपालब्धा तु या मुक्तिर्मर्यादामार्गवर्त्मनी॥
कृपालब्धा च या भक्तिः पुष्टिमार्गानुसारिणी॥४६॥
वामेतरकृपादृष्टी तस्य मुक्तिप्रदस्य ये॥
कृपावान्तरव्यापाररूपा भक्तिः फलात्मिका॥४७॥
साधनत्वं कृपायास्तु यतोहि पुरुषोत्तमः॥
अतः सिद्धान्तमुक्तानां मालायां वल्लभेन वै॥४८॥
उक्तञ्च **''ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम्''** [१५]॥
पुरुषोत्तमयोगस्य समासोक्त्या निरूपणम्॥४९॥

(उपसंहारः)

पुरुषोत्तमो भक्तिगम्यो तद्गम्या भक्तिरत्र वै॥
गीतापञ्चदशाध्यायगम्यावेतावुभौ मतौ॥५०॥
इति श्रीमद्भगवद्गीतापञ्चादशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

१४. ईशा. उप. ९-११
१५. सि.मु.१२

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ षोडशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

स्वात्मप्रापकयोगेन दैवासुरविभागतः ॥
योगेश्वरं पार्थशोकवियोजकमहं श्रये ॥१॥
स्वशक्त्याऽविद्यया स्वांशासुराणां यो लयप्रदः ॥
स्वशक्त्या विद्यया स्वांशदैवानां मुक्तिदोऽपि सः ॥२॥
पुष्ट्या स्वशक्त्या दैवेष्वितरेषां सैव भक्तिदः ॥
पुरुषोत्तमं तमेकं श्रीकृष्णं भक्त्यै नमाम्यहम् ॥३॥
गीतोक्तदैवासुरयोः तृतीयोत्प्रेक्षकान् मुदा ॥
पुष्टिप्रवाहमर्यादाग्रन्थकर्तॄन् नमाम्यहम् ॥४॥

(प्रतिपाद्यविषयविमर्शः)

सर्वं वै सृष्ट्यभिव्यक्तम् इन्द्रियादेर्हिगोचरम् ॥
सृष्ट्यव्यक्तमथान्यद् यत् शास्त्रैकाधिगमं तु तत् ॥५॥
शास्त्रोक्तज्ञानकर्मभिः ज्ञाता कर्ता हि यो भवेत् ॥
दैवसम्पत्तया ज्ञेयो ह्यन्यथा त्वासुरी मता ॥६॥
असूनेवेह यो राति प्राणपोषणतत्परः ॥
उद्वेजकः परेषान्तु सचासावासुरो मतः ॥७॥
शास्त्रोक्तकर्मज्ञानाभ्याम् असूनां संयमोत्सुकः ॥
कर्ता ज्ञाता सएवात्र दैवो जीवः प्रकीर्तितः ॥८॥
तस्य भोक्तृत्वमप्यैहिकामुष्मिकफलस्य च ॥
यथाशास्त्रं भवेदत्र दैवासुरविभेदतः ॥९॥
उभाभ्यां समतीतस्योभयप्राकट्यकारिणः ॥

सर्वथा कर्मस्वातन्त्र्यं कर्तुञ्चाकर्तुमन्यथा ॥१०॥
कर्तुं कर्तुः परेशस्य पारमैश्वर्यभावतः ॥
न लोके कर्मफलयोः सम्बन्धो यादृशो मतः ॥११॥
लोककर्मफलेभ्यो हि भिन्नं तत् शास्त्रगोचरम् ॥
शास्त्रोक्तकर्मफलयोरकर्तुं क्षम ईश्वरः ॥१२॥
मूलरूपेण कर्तुं यत् क्षमश्चांशेन न क्षमः ॥
निरंकुशैश्वर्यव्यक्तिः सृष्टिलीलासु तस्य वै ॥१३॥
ततश्च त्रिविधा सृष्टिराचार्यैः प्रतिपादिता ॥
पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदे षोडशग्रन्थगे ॥१४॥
अत्रोक्तदैवजीवस्य द्वेधा रूपो विबोधितः ॥
''पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक्पृथक् ॥१५॥
जीवदेहक्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च ॥
''द्वौ भूतसर्गौ''[१] वित्युक्ते प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः ॥१६॥
कश्चिदेव हि भक्तो हि - ''यो मद् भक्तः''[२] इतीरणात्''[३] ॥
नन्वासुरजीवानां प्राकट्यं भगवता कथम् ? ॥१७॥
सैषा शंका न वै युक्ता श्रुतौ हि प्रतिपादनात् ॥
''प्राजापत्या द्वया दैवाश्चासुराश्च''[४] प्रजापतिः ॥१८॥
तथात्मानं भावयित्वा रूपद्वयविभेदतः ॥
''स आत्मानमेव द्वेधाऽपातयद्''[५] न्यायतः स्वयम् ॥१९॥
सदंशैकप्रधाना ये तएवासुरसृष्टिगाः ॥
चिदंशजीवनाम्नोर्हि मर्यादायाः प्रधानता ॥२०॥

१.भग.गीता १६।६
२.भग.गीता १२।१३ - २०
३.पु.प्र.म.१ - ४
४.द्रष्ट.बृह.उप.१।३।१
५.द्रष्ट.बृह.उप.१।४।३

आनन्दांशप्रधानाः ये पुष्टिसृष्टौ हि वाञ्छिताः॥
पुष्टिविद्ये तथाऽविद्या शक्तयस्तस्य नोदिता॥२१॥
सृष्टित्रयनियमनाय सामर्थ्यात्तु निरंकुशात्॥
सृष्टेष्वपीह कर्तुं चाकर्तुमन्यथा पुनः॥२२॥
स्वातन्त्र्यं सर्वथा तस्य ज्ञेयं पुष्ट्यादिसृष्टिषु॥
अतएवोक्तमाचार्यैः सर्गभेदनिरूपणे॥२३॥
''इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः॥
वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः॥२४॥
मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च॥
कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा॥२५॥
''तानहं द्विषतो''[६] **वाक्याद् भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः॥**
अतएवेतरौ भिन्नौ सान्तौ मोक्षप्रवेशतः॥२६॥
तस्माज्जीवा पुष्टिमार्गे भिन्नाएव न संशयः॥
भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत्''[७] **॥२७॥**
कृष्णरूपेण प्रकटो भगवान् द्वापरे स्वयम्॥
''सृजाम्यहं तदात्मानं परित्राणाय साधूनाम्॥२८॥
विनाशाय दुष्कृताञ्च''[८] निजकंठोक्तिसिद्धता॥
पुष्टिमार्गेऽगीकृताय स्वसख्ये बहुधात्र वै॥२९॥
सेवातयैव युद्धाज्ञां दत्तवान् इति निश्चितम्॥
''मयैवैते हता पूर्वं निमित्तो भव''[९] वाक्यतः॥३०॥
दैवासुरविभागे च पुनराश्वासनं हि यत्॥

६.भग.गीता १६।१९
७.पु.प्र.म.९ - १२
८.भग.गीता ४।७ - ८
९.भग.गीता ११।३३

''मा शुच सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव''[१०] **॥३१॥**
पुष्पिकोक्ताध्यायसंज्ञा सर्वथैवोपपद्यते॥
दैवासुरविभागोऽयं योगो जीवेशयोजकः॥३२॥

(वक्तृश्लोकसंख्याविमर्शः)

अध्यायेऽस्मिन् समग्रेऽपि वक्ता वै केवलो हरिः॥
आद्येषु त्रिषु श्लोकेषु लक्षणं दैवसम्पदः॥३३॥
लक्षणं चासुरसृष्टेः श्लोकेनैकेन वर्ण्यते॥
लक्षणोत्थां हि चिन्तां च भ्रूभंगेनाभिव्यञ्जिताम्॥३४॥
पार्थस्य हृद्गतां दूरीकर्तुं स्वीयमुखोक्तिना॥
''मा शुच सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव''[११] **॥३५॥**
लोकत्रयविवक्षात्र न भूरेका विवक्षिता॥
''द्वौ भूतसर्गौ लोकेस्मिन्''[१२] वाक्यांशे 'लोक'शब्दतः॥३६॥
श्लोकैः पञ्चदशैरत्र सप्तमादूर्ध्ववर्तिभिः॥
कामो वै मोहजनकः मदः क्रोधात्तु जायते॥३७॥
यस्मिन् यस्य भवेल्लोभ तद्वत्स्वन्येषु मत्सरी॥
शास्त्रोक्ता रिपवः षड् ये तेषु त्रिषु च हेतुता॥३८॥
कामक्रोधौ च लोभश्च नरकद्वारवन्मताः॥
धर्मबोधकशास्त्राज्ञापालने बाधकास्त्विमे॥३९॥
एतेषामतएवात्र दैवजीवोपदेश्यता॥
इत्येवं पञ्चभिः श्लोकैरध्यायस्योपसंहृतिः॥४०॥
प्रसक्तानुप्रसक्तेयं चिन्ता काचिद् इहोच्यते॥
प्रमेयबलरूपां हि कृपां मत्वा स्वतो हि ये॥४१॥

१०.भग.गीता १६।५
११.भग.गीता १६।५
१२.भग.गीता १६।६

दैवम्मन्यास्तु दैवा वासुरा वेत्यनिर्णयात्॥
भक्तिं सकामां निर्दुष्टां पुष्टिमार्गे हि मन्वते॥४२॥
कामश्चेन्नरके हेतु भक्तिः कामात्मिका कुतः॥
न भवेन्नरकायैव? तैरियं न विचिन्त्यते॥४३॥
''न लौकिकः प्रभु कृष्णो मनुते नैव लौकिकम्''[१३]॥
''लोकार्थी चेद् भजेत् कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा''[१४]॥४४॥
''विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः''[१५]॥
इत्येवमादिवाक्यानां सधैर्ये ह्यवलोकने॥४५॥
कामदोषस्यानुगमः सकामायां कुतो नहि?॥
यावद् देहाभिमानन्तु यावच्छक्त्या सदैव हि॥४६॥
शास्त्राचार्ययोराज्ञोत्थापने नैव भक्तता॥
भक्त्यभावे पुष्टिजीवो भवेन्नो वेत्यनिर्णयः॥४७॥

(उपसंहारः)

प्रमेयरूपो देवो हि कृष्णस्त्वेको मतः सदा॥
प्रमाणरूपा तद्गीता शास्त्रमेकं मतं सदा॥४८॥
कृष्णसेवा द्विधा प्रोक्ता रूपनामविभेदतः॥
तस्यां कामादि दोषाः मां माभुवन् घातुका क्वचित्॥४९॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताषोडशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

१३.शिक्षाश्लो.२
१४.सि.मु.१६
१५.सं.नि.६

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ सप्तदशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

अहन्ताममताविद्धं सर्वं हि त्रिगुणात्मकम् ॥
वस्तुगत्या गुणातीते ब्रह्मण्येवार्पितं सदा ॥१॥
अर्पितं चेत् मतिरतिकृतिभिस्तद्विशोधनात् ॥
ब्रह्मपरमात्मश्रीकृष्णे भक्त्यै सेवोचितं भवेत् ॥२॥
अहंममाभिमानस्य शोधनाज्जीवयत्नतः ॥
स्वोपादानगुणातीतभावकाय नमोनमः ॥३॥

(प्रतिपाद्यविषयविमर्शः)

देहस्वभावानुरूपा श्रद्धापि त्रिगुणात्मिका ॥
श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्ध स एव सः ॥४॥
यज्ञदानतपांस्यत्र श्रद्धयानुष्ठितानि वै ॥
सात्त्विकादिप्रभेदैस्तु त्रिविधानि भवन्ति वै ॥५॥
ब्रह्म तु त्रिगुणातीतं ब्रह्मनिष्ठैरनुष्ठित - ॥
यज्ञदानतपांसीह गुणातीतानि स्युः पुनः ॥६॥

(अध्यायप्रतिपाद्यपूर्वोत्तरसंगतिविमर्शः)

श्रद्धानुकारिनिष्ठैका तथा शास्त्रानुकारिणी ॥
गरीया कतरा मान्या श्रेयसे हि नृणां पुनः ॥७॥
श्रद्धाभावः शास्त्रविधिः कतरश्चोत्तमो मतः ॥
श्रेयोभिलाषिणां लोके पार्थजिज्ञासितन्त्विह ॥८॥
''यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥९॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्'' [१] ॥१०॥
एवं निरूपणात् पूर्वं यत् कृष्णेनोदितं पुनः ॥
''कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ॥११॥
तं - तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया'' [२] ॥
ततः कामानुचारिण्याः श्रद्धायाः पालको सवै ॥१२॥
भगवानेव भवति षोडशे तत्तु निन्द्यते ॥
''यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ॥१३॥
न स सिद्धिमवाप्नोती'' [३] त्युभयोः संगति कथम् ? ॥
अध्यायेऽस्मिन् ततः पार्थजिज्ञासा संगतौ हि या ॥१४॥
दर्शिता निष्ठाविषये अध्यायोपक्रमेण वै ॥
पूर्वोत्तरभावरूपाध्यायस्येयं हि संगतिः ॥१५॥

(वक्तृश्लोकसंख्याविमर्शः)

जिज्ञासा त्वाद्यश्लोकेन पार्थस्यात्र निरूपिता ॥
शिष्टैः सर्वैः समाधानं सप्तविंशतिभिस्ततः ॥१६॥
देवतोद्देश्यको द्रव्यदानात्मा 'यज्ञ'उच्यते ॥
देवानां चापि द्रव्याणां दानानां त्रिगुणात्मता ॥१७॥
सा चतुर्थात्तु दशभिः श्लोकैरेतन्निरूपितम् ॥
चतुर्थात्पञ्चभिस्तु तपस्त्रैविध्यमुच्यते ॥१८॥
ततो द्वाभ्यां तु श्लोकाभ्यां दानत्रैविध्यवर्णनम् ॥

१.भग.गीता ७।२१
२.भग.गीता ७।२०
३.भग.गीता १६।२३

त्रयोविंशतिश्लोकात्तु षड्भिर्ब्राह्मिकवर्णनम् ॥१९॥
प्राकृतैर्हि गुणैः सृष्टिः गुणातीतात्तु ब्रह्मणः ॥
लोकनिष्ठैः कृतं सर्वं यत् तत्तु त्रिगुणात्मकम् ॥२०॥
ब्रह्मनिष्ठैः कृतं चेत् तत् नैर्गुण्यायोपपद्यते ॥
अतोऽत्रत्राग्रिमैः षड्भिरेतस्यैव निरूपणम् ॥२१॥
'ॐ' इत्येकाक्षरं ब्रह्मवाचकत्वेन वर्णितम् ॥
अकारादित्रिभिश्चांशैरुत्पत्त्यादित्रिबोधकम् ॥२२॥
ब्रह्मनिष्ठैः कृतानान्तु यज्ञदानादिकर्मणाम् ॥
निष्कामता 'तत्' पदेन द्योतितेति विनिर्णयः ॥२३॥
ब्रह्मार्थकं कृतं सर्वं 'सत्' च साधुतया मतम् ॥
'तद्' इति लोकदृष्टस्य फलस्याभावतः स्फुटम् ॥२४॥
'सद्' इति प्रकटं कर्म चेद् ब्रह्मार्थकमत्र हि ॥
तदा तु यज्ञदानादिकर्मणां ब्रह्मता मता ॥२५॥
सिद्धान्तस्य रहस्ये हि निजाचार्येण कीर्तिता ॥
ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः ॥२६॥
पञ्चानामपि दोषाणां निवृत्तिस्तस्य सेवने ॥
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणात् ॥२७॥
सर्वेषां ब्रह्मतागुणकृद् दोषाभावपूर्विका ॥
कृतौ मतौ रतौ तत्राहम्ममास्पदयोरपि ॥२८॥

(उपसंहारः)

शुकवन्मम चैतन्यं बद्धं यत्पञ्जरेऽहमः ॥
बहिराकाशवत्सर्वं ममताभासितं पुनः ॥२९॥
न लभे न लभे शान्तिं तस्मै चातः समर्पिते ॥
स्वभोगायोपलब्धं यत् तेषां तस्मै समर्पणे ॥३०॥
तत्प्रसादतयाभोगाग्रहे न ममताग्रहः ॥

तत्कृपादृष्टिना सृष्टिरेषा स्यान्मुक्तिवद् ध्रुवा ॥३१॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासप्तदशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

॥ अष्टादशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः ॥

(मंगलाचरणेनोपक्रमः)

अखण्डितैक्यं त्रैविध्ये योऽसौ निर्वहते सदा ॥
श्रीकृष्णो ब्रह्म परमात्मा भगवानिति शब्द्यते ॥१॥
ब्रह्मतोपनिषद्वेद्या परमात्मात्मनो रतौ ॥
सर्गादिदशलीलानां कर्ता भागवतोदितः ॥२॥
स नरस्य सखा भूत्वा नारायणसनातनः ॥
यदुद्गीता हि गीतेयं संवादस्तूभयोर्मतः ॥३॥
शास्त्रे गुह्याद् गुह्यतरस्वप्रपत्त्युपदेशकः ॥
सर्वदेहिशरण्योऽसौ हृदयान्मापसर्पतात् ॥४॥

(अध्यायप्रतिपाद्यविमर्शः)

अध्यायेऽष्टादशे चास्मिन् पूर्वोक्तनिखिलस्य वै ॥
उपसंहाररूपेणाप्युक्तानुक्तयोरिव ॥५॥
उपदेशोऽर्जुनाय श्रीकृष्णः प्राह सर्वशः ॥
दुरुक्तं नहि स्वोक्ते वै भगवत्त्वातु सम्भवेत् ॥६॥
वार्तिकत्वमतो वक्तुं नास्याध्यायस्य शक्यते ॥
तथापि स्वोपदिष्टस्य सर्वस्यापि विकल्पतः ॥७॥
त्यागात्यागविभागेनांशतः त्याज्य निरूपणात् ॥
अंशतोऽस्ति दुरुक्तत्वमतो वार्तिकरूपता ॥८॥
भाष्यान्ते वार्तिकत्वं च नातीवानुपपद्यते ॥
अत आश्रित्य तां रीतिमुक्तानुक्तदुरुक्तितः ॥९॥
पूर्वोक्तानां हि विषयाणामिह सिंहावलोकनम् ॥

कर्म सांख्यं च ज्ञानञ्च भक्तिं भगवदाश्रयम् ॥१०॥
अध्यायेऽष्टादशे चात्र पुनः प्रोवाच केशवः ॥
अर्जुनप्रार्थितं **''शाधि त्वां प्रपन्ने''**[१] ति वाक्यतः ॥११॥
स्वतः प्रपन्नपार्थाय न प्राप्तप्रापको विधिः ॥
प्रपत्तेर्हि विधिश्चान्ते आशिष्यामन्त्रणेऽथवा ॥१२॥
''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज''[२] ॥
भगवता 'व्रज'इत्युक्ते विधौ तत्कल्पना वृथा ॥१३॥

(श्लोकवक्तृसंख्याविमर्शः)

उपक्रमस्तु पार्थस्य चाद्यपद्येन वर्णितः ॥
संन्यासत्यागयोस्तत्त्वजिज्ञासेह कारिता ॥१४॥
तत्समाधानरूपेण भगवद्वचनानि वै ॥
एकसप्ततिभिः श्लोकैः पार्थसन्देहच्छेदनात् ॥१५॥
त्रिसप्ततितमे श्लोके श्रुत्वा पार्थस्य स्वीकृतिः ॥
स्वमोहनाशाद् बोधाप्त्या कृष्णोक्तानुकृतेस्ततः ॥१६॥
अन्ते चतुर्भिः श्लोकैस्तु गीताशास्त्रस्य संस्मृतिः ॥
व्यासप्रसादतः श्रुत्वा कृष्णोक्तौ हर्षविस्मयौ ॥१७॥
पार्थश्रीकृष्णयोरस्य संवादस्योपसंहृतौ ॥
नीतिभूतिजयश्रीणां ध्रोव्यं वै कृष्णपार्थयोः ॥१८॥

(भगवदुक्तप्रतिपाद्यविमर्शः)

श्लोकेनैकेन संन्यासत्यागयोस्तत्त्ववर्णनम् ॥
यज्ञदानतपःकर्मात्याज्यं त्याज्यं तु दोषवत् ॥१९॥
सात्त्विकादिप्रभेदेन त्यागत्रैविध्यवर्णनम् ॥

---

१. द्रष्ट. भग. गीता २।७
२. भग. गीता १८।६६

श्लोकैरेकादशैरुक्त्वा सांख्यसिद्धान्तसंग्रहौ ॥२०॥
पञ्चानामिह हेतूनां हेतुत्वं सर्वकर्मसु ॥
संनिरूप्य त्रिभिः श्लोकैः प्रतीत्योत्पादहेतुवत् ॥२१॥
स्वमात्रकर्तृताहन्ता दुर्मतिरेव केवला ॥
मध्ये सप्तदशे श्लोके युद्धेऽहंकारवर्णनात् ॥२२॥
स्वधर्मबुद्ध्यानुष्ठाने न हिंसादोषस्पर्शिता ॥
अतः सांख्यविचारेणाहंभावरहिता मतिः ॥२३॥
भवेद् यस्य न तस्य स्याद् बन्धनं युद्धकर्मणः ॥
एतादृशे तु पुंस्येवं युद्धादेशानियोज्यता ॥२४॥
एवं कर्मचोदनायां ज्ञानेन ज्ञेयज्ञातृता ॥
ज्ञातुं शक्नोति किं केन कः कुर्यात् कदा क्व च ॥२५॥
ज्ञानकर्मकर्तृणां च सत्त्वादित्रयभेदतः ॥
एकोनविंशतिश्लोकात् त्रित्रिश्लोकैर्निरूपणम् ॥२६॥
धृतेश्चापि सुखस्यापि सप्तश्लोकैर्निरूपणम् ॥
सत्त्वादित्रयभेदानां सर्वप्राकृतवस्तुषु ॥२७॥
प्रोतता चोदिता तेन चातुर्वर्ण्येऽपि तादृशम् ॥
श्लोकैश्चतुर्भिरुक्त्वैवं स्वकर्मणि रतस्य हि ॥२८॥
नरस्य कर्मसंसिद्धिस्तस्य चार्चनधीकृता ॥
सप्तचत्वारिंशततमेऽत्याज्यता स्वस्यकर्मणः ॥२९॥
तत्सर्वकर्मानुष्ठाने रागद्वेषविवर्जिते ॥
नैष्कर्म्यसिद्धिमाप्नोति कर्मसंन्यासतः पुनः ॥३०॥
तादृक्कर्मानुष्ठानाद्वै ब्रह्मप्राप्तिरसंशया ॥
अथ पञ्चाशततमाद् ज्ञाननिष्ठानिरूपणम् ॥३१॥
चतुश्लोकैः कथञ्चात्र तत्फलत्वेन लभ्यते ॥
भक्तिनिष्ठा तया तस्य तत्त्वज्ञानप्रवेशने ॥३२॥
भक्तेः पर्यवसानं तु भजनीयादेशपालने ॥

अन्यथाहंकृतेः नाशः कर्मबद्धस्य निश्चितः ॥३३॥
ईशोहि सर्वजीवान् वै कर्म कारयितुं क्षमः ॥
अप्यनिच्छतामपि नृणां लोके चाधीन्यभावतः ।३४॥
स्वकर्मणां हि निर्वाहो भक्त्या धर्मधर्मिणोः ॥
प्रपत्तिरेषा संप्रोक्ता मर्कटन्यायतः क्वचित् ॥३५॥
मार्जारीन्यायतश्चेषा पार्थायोपदेशिता ॥

(उपसंहारः)

इत्यष्टादशाध्यायप्रतिपाद्यविषयस्य वै ॥३६॥
संक्षेपो वर्णितो नूनं प्रसादात् श्रीहरेर्मया ॥
जीवबुद्धचेह यो दोषो वर्णने चेत्तु मामके ॥३७॥
सर्वं श्रीकृष्णचरणेऽर्पिते निर्दोषब्रह्मता ॥
निर्दोषं हि समं ब्रह्मगीतोक्ते श्रद्धया मम ॥३८॥
षट्सप्ततितमे वर्षे आयोः स्वाचार्यसंश्रयात् ॥
गीताध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः पूर्णतामगात् ॥३९॥

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्
एको देवो देवकीपुत्रएव ॥
यः शास्त्रार्थं स्वीयमिथं जगाद्
तं कृष्णास्यं वल्लभं सन्नमामि ॥४०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताष्टादशाध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेपः
गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण कृतः
सम्पूर्णः

उद्धृतवचनानुक्रमणिका

(अ - ऐ)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा..	(भग.गीता ४।६)	२५
अन्तर्याम्यक्षरं कृष्णो ब्रह्मभेदा..	(त.दी.नि.२।१२१)	६७
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्..	(भग.गीता ७।२३)	३
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता..	(द्र.भग.गीता २।१६-१८)	१२
अन्धन्तम प्रविशन्ति येऽविद्यां..	(ईशा.उप.९-११)	६८
अपि चेत्सुदुराचारो भजते माम..	(भग.गीता ९।३०-३१)	४
आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा..	(विष्णुपुरा.६।७।३१)	२,११
आत्मरत्यात्ममिथुनात्मानन्दः..	(छान्दो.उप.७।२५।२)	६३
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो..	(भग.गीता ३।३९)	१९
इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं..	(पु.प्र.म.९-१२)	७१
उद्धरेदात्मनात्मानम्..	(भग.गीता.६।५)	५६
एतद् ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं..	(श्वेता.उप.१।१२)	५५

(क - ज्ञ)

कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात्..	(ब्र.सू.२।३।३३)	२३
कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति..	(भग.गीता ५।१०)	५
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां..	(भग.गीता ५।२६-२८)	२९
कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना प्रपद्यन्ते..	(भग.गीता ७।२०)	७५
कार्यकारणकर्तृत्वे हेतु प्रकृति..	(भग.गीता १३।२०-२३)	५७
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं..	(भग.गीता १४।१९)	६५
चित्रं तवेहितम् अहोऽमितयोग..	(भाग.पुरा.८।२३।८)	२९
जाति-व्यक्ति-विभागोऽयं..	(भाग.पुरा.६।१५।८)	२२
ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं..	(त.दी.नि.१।१४)	४८
ज्ञेय स नित्यसंन्यासी यो..	(भग.गीता५।३)	२७
तत्र को मोह कश्शोक..	(ईशा.उप.७)	२१

(त - न)

तानहं द्विषतो..	(भग.गीता १६।१९)	७१
ते देवा इन्द्रम् अब्रुवन्..	(ऐत.ब्राह्म.२।१९)	६५
त्रयं सदेकमात्मायमात्मा..	(द्र.बृह.उप.१।६।३)	३७
त्रैगुण्यविषया वेदा..	(भग.गीता २।४५)	६५
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं..	(सि.मु.३)	६६
द्वै वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तामूर्ते..	(बृह.उप.२।३।१)	६४
द्वौ भूतसर्गौ लोकेस्मिन्..	(भग.गीता १६।६)	७०,७२
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य..	(भग.गीता ५।१४)	२२
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव..	(भग.गीता ११।८)	४८
न लौकिक प्रभु कृष्णो मनुते..	(शिक्षाश्लो.२)	७३
नष्टो मोह स्मृतिर्लब्धा..	(भग.गीता १८।७३)	५
नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां..	(भग.गीता१०।४०-४२)	४४
निर्गुणस्य गुणात्मनः..	(भाग.पुरा.१०।२६।१४)	६५
नृणां निःश्रेयसार्थाय..	(भाग.पुरा.१०।२९।१४)	२
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्च न मध्ये..	(महाना.उप.१०)	६३

(प - म)

पञ्चसप्ततियुक्तानि श्लोकानां..	(भग.गी भा.व्या.भू.पृ.१४)	१
पादोस्य विश्वा भूतानि..	(ऋक्संहि.१०।९०।३)	६६
पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण..	(पु.प्र.म.१-४)	७०
प्राजापत्या द्वया दैवा..	(द्रष्ट.बृह.उप.१।३।१)	७०
बन्धनान्मुक्तजीवस्य..	(द्रष्ट.श्वेता.उप.१।१०)	३२
बहुस्यामेको..	(छान्दो.उप.६।२।३)	४७
ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्..	(शतप.ब्रा.२।३।१-५)	६४
ब्रह्मरूपं जगज्ज्ञेयं ब्रह्मातो..	(सुबो.२।९।३५)	६६
ब्रह्मरूप द्वयोक्तितः मूर्त..	(द्र.बृह.उप.२।३।१)	५२
ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धि..	(सि.मु.१२)	६८
ब्रह्मसाम्योपलम्भिता..	(द्र.मुण्ड.उप.३।१)	३२

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हवि ब्रह्माग्नौ ..	(भग.गीता ४।२४)	२४
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू ..	(पु.सू.३)	२१
भयेन व्यथितं मनः..	(भग.गीता ११।४५)	४८
भूतैर्भूतानि भूतेश सृजत्यवति ..	(भाग.पुरा.६।१५।६)	२१
भूमिरापोनलो वायु खं मनो ..	(भग.गीता ७।४)	२१
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी ..	(भग.गीता ९।३४)	४२
मयैवैते हता पूर्वं निमित्तो ..	(भग.गीता ११।३३)	७१
मा शुच सम्पदं दैवीमभिजातो ..	(भग.गीता १६।५)	७२
मां च योऽव्यभिचारेण ..	(भग.गीता १४।२६)	३
मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि ..	(बा.बो.५-१५)	६२
(य - व)		
य शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते ..	(भग.गीता १६।२३)	७५
यं यं वापि स्मरन्भावं ..	(भग.गीता ८।६)	४०
यमेव वृणुते तस्य तनुं ..	(कठो.उप.१।२।२३)	४७
ये यथा मां प्रपद्यन्ते ..	(भग.गीता ४।११)	५,४५
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्य ..	(भग.गीता ४।३५)	२४
यो मद् भक्तः..	(भग.गीता १२।१३-२०)	७०
यो यो यां यां तनुं भक्त ..	(भग.गीता ७।२१)	७५
योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञान ..	(भग.गीता ४।४१)	२७
रूपप्रपञ्चकरणाद् आसक्त ..	(त.दी.नि.२।१८)	६६
लोकार्थी चेद् भजेत् कृष्णं ..	(सि.मु.१६)	७३
विषयाक्रान्तदेहानां नावेश ..	(सं.नि.६)	७३
वृष्णिषु वासुदेव हि ..	(द्र.भग.गीता १०।३७)	४४
वैराग्यं प्रथमेऽध्याये ..	(भग.गीता.तत्त्व.दी.२।१।१-६)	१०
व्यक्ताव्यक्तसमं ह्येकं ..	(द्र.भग.गीता ५।१९,द्र.बृह.उप.१।३।२२)	३२
(श - ह)		
शरणं व्रजे..	(भग.गीता १८।६६)	६
शाधि त्वां प्रपन्न..	(द्र.भग.गीता २।७)	७९

श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञात् ..	(भग.गीता ४।३३)	४
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाद् ..	(भग.गीता १२।१२)	४
स आत्मानमेव द्वेधाऽपातयद् ..	(द्रष्ट.बृह.उप.१।४।३)	७०
संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ता ..	(श्वेता.उप.१।८)	५६
सतस्त्वात्मनः तावद् ..	(द्र.भग.गीता.२।१६-१८)	१२
समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं ..	(बा.बो.१८-१९)	६२
समं सर्वेषु भूतेषु ..	(भग.गीता.१३।२७-२८)	५७
सर्वं ब्रह्मोपनिषदमनिराकार्यमेव ..	(केनोप.१।१)	२४
सर्वगुह्यतमं भूय शृणु मे ..	(भग.गीता १८।६४-६६)	६
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामैकं ..	(भग.गीता १८।६६)	४,७९
सर्वभूतस्थितं यो मां ..	(भग.गीता ६।३१)	३
सांख्ययोगौ प्रकीर्तितौ ..	(बालबोध.६,९)	११
सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि ..	(भग.गीता ११।५२-५५)	४८
सृजाम्यहं तदात्मानं ..	(भग.गीता.४।७-८)	७१
स्वक्रीडार्थं कृते त्वस्मिन् ..	(द्र.सुबो.१।८।४०)	३७